• वर्ष ६५ • अंक २१ • मूल्य ₹२०

नवम्बर (प्रथम) २०२३

पाक्षिक परोपकारी

सच्चे शिव के उपासक, वेदोद्धारक, स्वराज्य के उद्घोषक,
कालजयी पुस्तक के लेखक, आर्यसमाज के संस्थापक,
निर्भीक, क्रान्तिकारी, दिग्विजयी संन्यासी

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज

के बलिदान पर कोटि कोटि नमन

ओ३म्

यजुर्वेद-भाषाभाष्यम्

(प्रथमो भागः)

परमहंसपरिव्राजकाचार्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितम्

प्रथमाध्यायतः विंशति-अध्यायपर्यन्तम्

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित वैदिक पुस्तकालय

द्वारा

यजुर्वेद भाषा भाष्य प्रथम एवं द्वितीय भाग

का नवीन संस्करण प्रकाशित

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६५ अंक : २१

दयानन्दाब्द: १९९

विक्रम संवत् - कार्तिक कृष्ण २०८०

कलि संवत् - ५१२४

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२४

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४
०८८९०३१६९६१

मुद्रक-देवमुनि-भूदेव उपाध्याय
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
७७४२२२९३२७

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

नवम्बर प्रथम, २०२३

अनुक्रम

०१. दीपावली पर्वोत्सव	सम्पादकीय	०४
०२. महर्षि दयानन्द का मूल्याङ्कन-६	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०६
* परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रम		०९
०३. श्रेष्ठतम कर्म 'यज्ञ' की व्यापकता	प्रो. नरेश कुमार धीमान्	१०
* ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन		१७
०४. एक पुरानी उलझन-२	पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय	१८
०५. संस्था समाचार	श्री ज्ञानचन्द	२६
* आचार्य डॉ. धर्मवीर जी की सातवीं पुण्यतिथि मनाई		३०
* १४० वाँ ऋषि बलिदान समारोह		३१
* वेदगोष्ठी-२०२३		३३

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।
किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सम्पादकीय

दीपावली पर्वोत्सव

मानव अपने स्वभाव के अनुसार समय-समय पर पर्व-उत्सव आयोजित करता रहता है। पर्व का अभिप्राय ही है कि पूर्णता और प्रेरणा प्रदान करना। इनमें कुछ पर्व तो आमोद-प्रमोद के साधन बन चुके हैं। कुछ पर्व आंशिक रूप में अपना सांस्कृतिक स्वरूप बनाए हुए हैं।

वैदिक परम्परा में दर्श- पौर्णमास का स्थान महत्त्वपूर्ण है। दर्श-पौर्ण मास को सभी इष्टियों की प्रकृति माना जाता है। इनमें पौर्णमास का आयोजन पहले (पूर्णिमा के दिन) होता है। इसके पश्चात् अमावस्या के दिन दर्शेष्टि की जाती है।

दीपावली का पर्व कार्तिक मास की अमावस्या के दिन मनाया जाने वाला दर्शेष्टि पर्व है। वर्ष की बारह अमावस्याओं में कार्तिक अमावस्या का अन्धकार सघनतम माना जाता है। इसी दिन (इससे कुछ पूर्व के दिनों में) यह दर्शेष्टि तथा कृषक के घर नवीन धान्य (चावल, बाजरा, ज्वार, उड़द आदि) आने के कारण इस अवसर पर 'नवसस्येष्टि' का भी विधान है।

संसार में तेज का स्थान अति महत्त्वपूर्ण है। तेज श्री का मुख्य रूप है। तेजोहीन मनुष्य को हतश्री भी कहा जाता है। मनुष्य के जीवन में ईश्वर प्रदत्त तीन तेज अति महत्त्वपूर्ण हैं-

१. सूर्य २. चन्द्र ३. अग्नि

इस तेजत्रय की सहायता से मनुष्य के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं। इन तीनों में सूर्य का तेज सर्वाधिक एवं मुख्य है, किन्तु गति क्रम के अनुसार सूर्य के समीप अथवा दूर होने से सूर्य का तेज भी अधिक अथवा न्यून मात्रा में प्राप्त होता है। ज्योतिष शास्त्र में मेष राशिस्थ सूर्य उच्च भाव तथा तुलाराशिस्थ सूर्य नीच भाव का है। ज्योतिष के अनुसार तुलाराशिस्थ में स्थित सूर्य तेज का अत्यल्प और विकृत प्रभाव होता है। अमावस्या के दिन चान्द्र-तेज का सर्वथा अभाव रहता ही है। इस अवस्था में तृतीय तेज 'अग्नि' ही शरण्य है।

वर्णव्यवस्था के रूढ़ होने पर पर्व भी उसके साथ सम्बद्ध कर दिए गए। जिस प्रकार श्रावणी उपाकर्म/रक्षाबन्धन ब्राह्मण वर्ण के साथ सम्बद्ध कर दिया गया उसी प्रकार तेज/श्री/समृद्धि की कामना के कारण इस पर्व को वैश्यवर्ग के साथ सम्बद्ध कर दिया गया।

वैसे भी वर्षा ऋतु अभी समाप्त हुई होती है। सब ओर पंक, नमी बढ़ने के कारण अनेक विध कृमि-कीट का भी प्राबल्य हो जाता है। इन सूक्ष्म रोग जन्तुओं के विनाश के लिए प्रकाश-तेज की दृष्टि से जहाँ इष्टि-यज्ञ का विधान है, वहीं लोक में इसका सूक्ष्म पर्यायरूप में दीप प्रज्वलन प्रारम्भ हो गया। दीप प्राबल्य के आधार पर ही इसे दीपमालिका-दीपावली नाम से भी माना जाने लगा। नवान्न के आगमन पर नवसस्येष्टि तो गौण हो गया और दीपावली अधिक प्रचलित हुआ।

नवसस्येष्टि-दर्शेष्टि अथवा दीपावली के अतिरिक्त वेदभक्त आर्यजन की दृष्टि में इसका एक अन्य भी महत्त्व है, वह है- महर्षि दयानन्द सरस्वती का निर्वाण दिवस।

उन्नीसवीं सदी यद्यपि पुनर्जागरण की सदी मानी जाती है। उस समय धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक दृष्टि से इस प्रकार का वातावरण था, जिसमें सभी क्षेत्रों में कुरीतियों तथा अन्धविश्वास ने जड़ जमाई हुयी थी।

महर्षि ने धर्म के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए उसे जीवन का अनिवार्य अंग प्रतिपादित किया। महर्षि की दृष्टि मनुष्य-मनुष्य के मध्य किसी भी धर्माधारित विभेद को स्वीकार नहीं करती।

सामाजिक क्षेत्र में महर्षि ने जन्मना जाति-प्रथा की जड़ पर प्रहार करते हुए-'शूद्रातिशूद्रों की पाठशाला' में

जाकर वेदोपदेश प्रदान किया। नारी सशक्तिकरण के प्रबल समर्थक महर्षि ने स्त्री शिक्षा पर बल प्रदान किया।

विदेशी शासन के होते हुए भी सर्वप्रथम स्वदेशी राज्य का उद्घोष करनेवाले भी वही थे।

वेद को ईश्वर का नि:श्वास मानकर मानव मात्र को उसके अध्ययन का अधिकारी मानकर, जनसाधारण के लिए संस्कृत एवं आर्यभाषा हिन्दी में भाष्य किया, किन्तु विष प्रदान के कारण कार्तिक अमावस्या संवत् १९४० वि. तदनुसार ३० अक्टूबर १८३० के इसी दीपावली के दिन महर्षि का निर्वाण हुआ।

महर्षि का निर्वाण दिवस होने के कारण यह दीपावली उनके अनुयायिओं के लिए यह संकल्प का पर्व है। महर्षि के प्रारम्भ किए अधूरे कार्यों - वेदभाष्य तथा वैदिक सिद्धान्तों को जनसामान्य की भाषा के माध्यम से विश्व के प्रत्येक मानव तक पहुँचाना तथा जन्मनाजाति प्रथा का समूल उन्मूलन, मनुष्य और मनुष्य के मध्य किसी भी प्रकार का धार्मिक विभेद आदि को समाप्त करने के साथ प्रखर राष्ट्रवाद को सम्बल प्रदान करने के संकल्प का पर्व है। इस दृष्टि से जितना कार्य होना चाहिए था, उसका स्वल्प ही हुआ है। लक्ष्य पूर्ति के लिए सर्वात्मना समर्पण ही प्रकाश का अनुवर्तन हो सकेगा।

-डॉ. वेदपाल

आर्ष ग्रन्थों का पठन

महर्षि लोगों का आशय, जहाँ तक हो सके वहाँ तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें, जैसे पहाड़ का खोदना, कौड़ी का लाभ होना और अन्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना, बहुमूल्य मोतियों का पाना।

वेद पथ

कुसमाकर

'वेद-पथ' निर्णय करेगा, न्याय क्या अन्याय क्या है?
आज तक समझे न, जीवन का धवल ध्रुव-ध्येय क्या है?
चल पड़े पथ पर न समझे, 'श्रेय' क्या है 'प्रेय क्या' है?
किसलिये आया यहाँ हूँ, चाहिए करना मुझे क्या?
क्यों पराभव में पड़ा, भव सिन्धु से तरना मुझे क्या?
सत्य, सुख, सुविधा, सफलता का सबल सदुपाय क्या है?

प्रिय 'प्रलोभन' के उदधि में एक ऐसा ज्वार आया।
जो प्रकम्पित प्राणियों में 'हीनता' का भार लाया।
ऊर्मियाँ 'उत्कोच' को उठती अधम अविचार भरतीं।
दुष्ट दानवता प्रबल पाखण्ड की बौछार करतीं।
विधि-विधानों से विहित बोलो, विमल व्यवसाय क्या है?

बढ़ गई इतनी महत्त्वाकाँक्षाएँ आज जन की।
विश्व के रक्तिम दृगों में तैयारी है गाँव मन की।
स्वार्थ की उन्मत्त मदिरा मग्न है परमार्थ प्रतिमा।
भूल भ्रमरी सी भटकती आत्म-गौरव-ज्ञान-गरिमा।
व्यास 'व्यय' का बढ़ रहा है, पर न समझे 'आय' क्या है?

खिंच गई ऐसी क्षितिज पर ग्राम धूमिल एक रेखा ।
विश्व ने प्यासे दृगों से, एक क्या सौ-बार देखा
द्रोह के द्रुम पर चढ़ी कितनी विषय विषबेलियाँ हैं।
बह रही है शोण-शोषण, कर रही अठखेलियाँ हैं।
कौन समझावे कि अन्तर छिपा अभिप्राय क्या है?
वेद-पथ निर्णय करेगा, 'न्याय' क्या 'अन्याय' क्या है?

आर्योदय २० मार्च १९६६ से साभार।

महर्षि दयानन्द का मूल्याङ्कन-६

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

महर्षि का प्रचार अभियान - कुछ विशेषतायें महर्षि के वेद प्रचार अभियान की विशेषताओं की ओर भी ऋषि का मूल्याङ्कन करने वालों ने पूरा-पूरा ध्यान नहीं दिया। ध्यान तो कुछ एक देशी विदेशी विद्वानों ने कुछ-कुछ दिया, परन्तु जितना ध्यान इस पर देना चाहिये था उतना नहीं दिया गया। आजकल आर्यसामाजिक पत्रों में देश के स्वराज्य संग्राम तथा स्वदेशी के प्रचार पर लिखने वाले नये-नये इतिहासज्ञ सामने आ रहे हैं, इनके पास रटी रटाई चार छह बातें हैं। कुछ ठोस विशेष सामग्री नहीं। यथा महर्षि जी ने जालन्धर में दिये गये एक व्याख्यान में सन् १८५७ के विप्लव में गोरों द्वारा लखनऊ आदि में निर्दोषों की हत्या व क्रूर व्यवहार की कड़ी निन्दा करते हुये लिखा है कि इस प्रकार अन्यायकारी शासन देर तक नहीं रहता।

एक ही नेता का ऐसा कहने का साहस हो सका - उन्नीसवीं शताब्दी के एक ही नेता को ऐसा लिखने का साहस हो सका। बीसवीं शताब्दी में श्री पण्डित भगवद्दत्त जी ने यह डंके की चोट से लिखा कि ऋषि के पत्रव्यवहार में प्रत्येक दूसरे तीसरे पृष्ठ पर देशोन्नति, देश सुधार, जनकल्याण पर ऋषि ने बल देकर लिखा है। और किसी नेता किसी महापुरुष के पत्रव्यवहार का ऐसा मुख्य विषय देशोन्नति नहीं है। शिल्प, औद्योगिक उन्नति, कृषि, कंगाली, देश-विदेश में व्यापारिक उन्नति के विषयों को ऋषि ने लिया है। देश का दु:खड़ा तो उनके व्याख्यानों का ऐसा मुख्य विषय रहा कि आर्य विचारक किसी कवि की इन पंक्तियों में उनकी मनोदशा को चित्रित करते रहे -

हम रात को उठकर रोते हैं
जब चैन से आलम सोता है

बड़ौदा में उनके व्याख्यानो का विरोध - महर्षि ने बड़ौदा में सबसे पहला व्याख्यान देशोन्नति पर (सन् १८७५) दिया तथा दूसरा वेदाधिकार विषय पर दिया। दूसरे व्याख्यान को सुनने के लिये श्रोता बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुये। पण्डित लोग भी अच्छी संख्या में आये। श्री महाराज ने मधुर स्वर से वेद की सुप्रसिद्ध ऋचा-'यथेमाँ वाचं कल्याणीम्' का उच्चारण करके इसकी व्याख्या आरम्भ की ही थी कि स्वयं को सनातनकर्मी मानने वाले जन्माभिमानी ब्राह्मण उठ खड़े हुये। इन सनातन धर्म की दुहाई देने वालों ने ऋषि का जितना विरोध किया इतना विधर्मियों ने नहीं किया।

उन जन्माभिमानी ब्राह्मणों ने कानो में उंगलियाँ दे दीं, क्योंकि उनकी ऐसी मान्यता रही है कि स्त्री, शूद्र तथा मुसलमान आदि को वेद के श्रवण का अधिकार नहीं है। श्रोताओं में उस समय बड़ौदा के प्रसिद्ध गायक नवाब मौलाबख़्श भी उपस्थित थे। उस युग में उसे गायक के रूप में एक लाख रुपये पेंशन के रूप में प्राप्त होते थे। कहा जाता है कि उस घड़ी कुछ शास्त्रियों ने यहाँ तक कह डाला कि स्वामी जी ब्राह्मण कुलोत्पन्न नहीं हैं। तभी तो ऐसा कर रहे हैं। बैठ जाओ! अथवा चले जाओ!! पण्डितों के आचरण पर मणिभाई यशभाई, रावबहादुर गजानन आदि ने दृढ़तापूर्वक उन शास्त्रियों से कहा कि या तो आप लोग बैठ जाएँ, नहीं तो सभा छोड़कर चले जाएँ परन्तु फिर थोड़ी देर पश्चात् वे लोग कोलाहल करने लगे कि हमारे साथ शास्त्रार्थ कर लो। स्वामी जी ने कहा- ''व्याख्यान को समाप्त होने दीजिये फिर शास्त्रार्थ भी हो जाएगा।'' ऋषि जी के इतना कहने पर भी वे शोर मचाते रहे।

कोई शास्त्रार्थ का साहस न कर सका - शास्त्रार्थ भी किसने करना था? यही जन्माभिमानी ब्राह्मण अंग्रेजों को संस्कृत पढ़ाते रहे। उन्होंने हिन्दुओं की पौराणिक

मान्यताओं की भी धज्जियाँ उड़ाकर लाखों को ईसाई बना लिया।

अमेरिका के sunday magazine ने लिखा था कि देश भर का कोई ब्राह्मण ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ करने का साहस न कर सका। बड़ौदा की यह घटना ऋषि का मूल्यांकन करने के लिये बहुत महत्त्वपूर्ण है। इससे प्रमाणित होता है कि 'सनातन धर्म- सनातन धर्म' की रट लगाने वालों ने धर्म प्रचार तो क्या करना था ये लोग तो दूसरे मतावलम्बियों को वेद मन्त्र सुनाने पर ही भुन जाते रहे। ऋषि दयानन्द डटकर अपने मन्तव्यों का प्रचार करते रहे।

इन्दौर के श्री विष्णु गुप्त द्वारा मूल्याङ्कन - श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय को इन्दौर के श्रीयुत विष्णु गुप्त ने ऋषि की वाणी का मूल्याङ्कन करते हुये कहा था, ''स्वामी जी उत्कृष्ट वक्ता थे। उनका स्वर उच्च, गम्भीर और मधुर था। उनकी बोलने की रीति तेज:पूर्ण और उनका आक्रमण तीव्र होता था, उनकी वाणी एकदम लोगों के हृदय में प्रवेश कर जाती थी, इसलिए वे विरुद्ध-पक्ष के लोगों को असह्य हो जाती थी और वे बीच में से ही उठकर चले जाते थे।''

राजस्थान के बनेड़ा नगर निवासी विद्वान् श्री नगजीराम ने अपने विद्यार्थी जीवन में ऋषि दर्शन किये थे। आपने उस महर्षि के शरीर का जो विशद वर्णन किया है वह अत्यन्त हृदयस्पर्शी है। उनके हस्तलेख का चित्र हमने 'सम्पूर्ण जीवन चरित्र' के दूसरे भाग पृष्ठ ५३० पर दिया है। इसे पढ़कर एक उर्दू कवि का यह पद्य हमारे अधरों पर उतर आया -

सूरते ज़ेबा पे तेरी सीरते ज़ेना निसार।
एक गर थी महताब दूसरी थी आफ़ताब।।

''स्वामी जी महाराज के शरीर का वर्णन इस प्रकार है कि ऐसी दीर्घ पुष्ट एवं भव्यमूर्ति मैंने उसके सिवाय आज तक ऐसी कहीं किसी के भी नहीं देखी। महात्मा के मस्तक की परिधि ढाई फीट से कम न थी और गर्दन बड़ी ऊँची, मुखारविन्द गोलाई को लिए हुए लम्बा था। नेत्र विशेष बड़े नहीं थे, कर्ण न नासिका बड़े-बड़े थे। दोनों भुज बड़े पुष्ट और आजानु लम्बे थे। वक्षस्थल किसी वीर धनुषकारी के समान चौड़ा और दृढ़ था। शरीर अति पुष्ट होने पर भी उदर छिटका हुआ नहीं था। दोनों जाँघें बड़ी पुष्ट और तीन फीट की परिधि से कम नहीं थीं। पिंडलियाँ भी पुष्ट एवं साफ़ थीं। पैर सवा फीट के करीब लम्बे होंगे। शरीर का वर्ण गोरा था। शिर के बाल श्वेत होने लग गये थे। जिस समय वे घूमने को निकलते मलतानी मिट्टी शरीर पर लगा, जोड़े पहन, एक दोशो को सिर ये बाँध चद्दर से शरीर को ढक हाथ लट्ठ कमण्डल लिये स्वयं एकाकी ही घूमने निकलते थे।

उस समय जंगल में यदि किसी अज्ञात पुरुष के अचानक दृष्टिगोचर होते तो वह इनको मनुष्य नहीं देव विशेष की मूर्ति मान चकित होके मार्ग को छोड़ एक तरफ खड़ा हो जाता। दर्शन कर बतलाने पर निर्भय हो प्रसन्न होता। आपका घूमना तीन मील से कभी कम नहीं होता था। एक दिन मुझे व मेरे मित्र गौरी शंकर जी को स्वामी जी के साथ घूमने जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। किन्तु स्वामी जी के धीमे-धीमे चलने पर भी हम दोनों उनके साथ नहीं निभा सके। अतएव ४००/५०० गज़ के फ़ासले से वापिस लौट आये।[२]''

पादरी टी. जे. स्कॉट ने भी ऋषि के गंगा तट पर दर्शन कर उनके भव्य शरीर पर बहुत सुन्दर शब्दों में लिखा परन्तु नगजीराम के इस लेख जैसा अभावोत्पादक वर्णन दूसरा नहीं मिलेगा।

प्रदूषण मुक्त करने का आन्दोलन छेड़ा - आज सारे संसार में Pollution (प्रदूषण) शब्द का प्रयोग किया जाता है आज से सत्तर वर्ष पूर्व इसका अर्थ मात्र गन्दा करना किया जाता था। अब तो प्राथमिक विद्यालयों के दूसरी चौथी के नन्हें-नन्हें विद्यार्थी इस शब्द का अर्थ वायु प्रदूषण ही लेते हैं।

ऐसा पहला विचारक - इस शब्द का इन अर्थों

में प्रयोग करने वाला विश्व का पहला विचारक सुधारक महर्षि दयानन्द था कोई और नहीं। यह ठीक है कि ऋषि दयानन्द अंग्रेजी भाषा नहीं जानते थे अत: Pollution पाल्यूशन शब्द का उन्होंने प्रयोग क्या करना था, परन्तु वायुमण्डल को दूषित करना मनुष्य समाज तथा प्राणी जगत् के लिये घातक मानकर आपने विश्व में इसके विरुद्ध सबसे पहले आन्दोलन छेड़ा। उस समय किसी सरकार किसी नेता और किसी वैज्ञानिक के मस्तिष्क में वायु प्रदुषण से प्राणियों को होने वाली हानि का संकट था ही नहीं।

महर्षि जहाँ भी जाते थे किसी को फूल तोड़ते देखकर वह इस पाप-दुष्कर्म मानकर रोकते थे। जब सन् १८७७ में आप तत्कालीन पंजाब की राजधानी लाहौर पधारे तो उस समय एक प्रेमी सज्जन उनके लिये एक फूल भेंट करने के लिये तोड़कर लाया था। तब ऋषि जी का उस सज्जन से क्या संवाद हुआ उसे ऋषि जीवन से यहाँ उद्धृत किया जाता है।

''एक दिन पण्डित जी ने (पण्डित शिवनारायण अग्निहोत्री) एक पुष्प लाकर भेंट किया। स्वामी जी ने कहा- 'यह तुम क्यों तोड़ लाये।' पण्डित शिवनारायण जी ने कहा कि आपके लिए लाया हूँ।''

स्वामी जी ने कहा कि यह तुमने बुरी बात की। पूछा - 'किस प्रकार?' स्वामी जी ने उत्तर दयिा कि जितने समय के लिए ईश्वर ने सुगंधि ...''

विचारशील प्रबुद्ध पाठक इस उद्धरण को बार-बार पढ़ें विचारें। अपने आपसे ही पूछें कि क्या उन्नीसवीं शताब्दी तक विश्व में कहीं भी जन्मे किसी महापुरुष किसी राजनेता और वैज्ञानिक के जीवन में ऐसी कोई छोटी बड़ी घटना है। संसार में क्या कभी किसी महापुरुष ने फूल तोड़ने की यह हानियाँ कभी बताई या कहीं? फूल न तोड़ने के जो लाभ ऋषि ने कहे वे कभी किसी ने कहे क्या? यदि ऊपर इस उद्धरण में हम कोष्टक में सन् १८७७ न देते तो आज का पाठक इसे सन् २०२३ की घटना बताता। क्या इस कथन का एक-एक शब्द पूर्णतया वैज्ञानिक सोच चिन्तन नहीं है?

इसी कारण से इतिहास के एक विद्यार्थी के नाते से हमने यह प्रसंग, यह घटना देते हुए इसके शीर्षक में ही यह बता दिया कि यह ऋषि दयानन्द ही थे जिन्होंने इतिहास में सर्वप्रथम विश्व के प्रदूषण मुक्त कने का आनदोलन छेड़ा।

ऋषि दयानन्द का सरल-स्पष्ट हितकर उपदेश - महर्षि दयानन्द का मूल्याङ्कन करने वाले विद्वानों तथा इतिहासकारों को उनके यत्र-तत्र दिये गये सर्वहितकारी उपदेशों तथा व्याख्यानों पर गम्भीरता से विचार करके उनके व्यक्तित्व व देन का मूल्याङ्कन करना चाहिये। ऋषिवर १७ अक्टूबर सन् १८७७ से २६-१०-१८७७ तक पुन: लाहौर में डेरा डालकर वेद-प्रचार में मग्न रहे। इस बार आप नवाब रज़ा अली के उद्यान में ठहरे थे। उस समय की महत्त्वपूर्ण घटना यहाँ दी जाती है। विचारशील गुणी इतिहासप्रेमी इसपर गम्भीरता से चिन्तन करके अपना निर्णय दें।

धन सम्पदा का आधिक्य - ''एक दिन इसी उद्यान में एक पादरी महोदय तथा एक मिस महोदया स्वामी जी से मिलने को आए। वार्तालाप करते हुए स्वामी जी ने कहा कि सम्पदा का एक सीमा से अधिक हो जाना जाति के पतन का कारण होता है। इस आर्यजाति का पतन भी ऐसे ही हुआ। यह भी कहा कि अब अंग्रेजों की भी धन के आधिक्य के कारण आदत बिगड़ती जाती है। हमारा ऐसा अनुभव है कि जिन दिनों हम वनों में रहा करते थे हम प्रभातकाल में सूर्योदय से पूर्व बहुत से अंग्रेजों को वायु सेवन करते देखा करते थे, परन्तु आजकल अंग्रेज बहुत दिन चढ़े उठते हैं।''

ऋषि ने निष्पक्ष होकर एक सर्वहितकारी खरी बात अपने देशवासियों व विदेशियों के लिए लिख दी। धन का आधिक्य सबके पतन का कारण होता है। 'Lixury leads to downfall.' यह क्या गोरों को कहने

का कभी किसी ने साहस किया?

गोस्वामी घनश्याम, बाल शास्त्री के मुख से ऋषि का एक प्रसंग - हमने महर्षि दयानन्द के सम्पूर्ण जीवन चरित्र के दोनों भागों में गोस्वामी घनश्याम मुल्तान निवासी द्वारा वर्णित पं. बाल शास्त्री से काशी शास्त्रार्थ की चर्चा का प्रसंग दिया है। जीवन चरित्र के पहले भाग से इसे यहाँ उद्धृत किया जाता है। अधिक जानकारी के इच्छुक इसे दूसरे भाग का पृष्ठ १५१-१५२ भी अवश्य देखें।

गोस्वामी घनश्याम दास मुल्तान के एक मूर्धन्य संस्कृतज्ञ विद्वान् थे। स्वामी वेदानन्द जी भी कभी कुछ समय इनसे पढ़े थे। आप आर्यसमाजी तो नहीं थे, परन्तु वेद व ऋषि के भक्त प्रशंसक थे। स्वामी वेदानन्द जी इस प्रसंग को अपने लेखों तथा व्याख्यानों में प्रचारित करते रहे। अपनी पुस्तक ऋषि बोध कथा में भी दिया है। इस लेखक ने देश विभाजन के पश्चात् सन् १९४७ में लेखराम नगर कादियाँ में उनकी व्याख्यान माला में पहले पहल सुना था।

''गोस्वामी घनश्यामदास जी श्रीमन्त मुलतान निवासी सम्वत् १९३६ के प्रयाग कुम्भ के पश्चात् गोस्वामी गोवर्धन दास तथा पं. रामदेव एवं अनन्तराम जी के साथ जीवनगिरि जी प्रज्ञाचक्षु के निवास पर गये जो अच्छे विद्वान् तथा वेदान्त के अधिकारी पण्डित थे। पण्डित अनन्तराम ने उनसे प्रश्न किया कि महाराज वेद का अधिकार सबको है और साथ ही अध्याय २६वाला मन्त्र पढ़ा। जीवनगिरि जी ने कहा, इसका यह अर्थ नहीं प्रत्युत यह है कि यज्ञ में यजमान ऐसी वाणी कहे कि जो सबके कल्याणवाली हो फिर स्वामी जी के विषय में पूछा तो उन्होंने कहा कि वह ब्राह्मण का पुत्र है तथा स्वामी पूर्णानन्द जी का शिष्य है। संस्कृत के बोलने तथा योग में उसकी विशेष रुचि है। खण्डन मण्डन में भी आरम्भ से ही उसकी रुचि थी तथा बहुत चञ्चल बुद्धि था। तब गोस्वामी जी आदि को निश्चय हो गया कि यह केवल स्वार्थी लोगों का कथन है कि वे ईसाई हैं तथा ईसाई बनाने के लिए नियुक्त किये गये हैं। फिर वह गोस्वामी घनश्यामदास तथा चाँदूमल खत्री मुल्तानी के साथ काशी गये और बाल शास्त्री जी के निवास पर उन्हें मिले। वार्तालाप करते हुए प्रश्न किया कि आपका तथा स्वामी जी का जो शास्त्रार्थ (काशी शास्त्रार्थ सन् १८६९) हुआ था उसमें किसकी जय हुई थी?

तब शास्त्री जी ने अत्यन्त मधुर वाणी तथा नम्रता से कहा कि हम गृहस्थी तथा वे यति संन्यासी हमारे पूज्य, उनका हमारा शास्त्रार्थ कहाँ बन सकता है? इन शब्दों में गोस्वामी जी के सब सन्देह दूर हो गये और उन्हें स्वामी जी के सत्यवादी तथा सच्चा वैदिक धर्मोपदेशक होने पर पूर्ण विश्वास हो गया।''

गोस्वामी को कभी किसी ने उद्धृत नहीं किया - यहाँ यह भी बताना उपयोगी रहेगा कि कभी ऋषि दयानन्द की वैदिक मान्यताओं पर गोस्वामी घनश्याम आर्य पत्रों में पठनीय लेख देते रहे। उन्हीं मे से दो लेख इस सेवक ने परोपकारी मे पुनः प्रकाशित करवाये थे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी का इन गोस्वामी जी से बहुत स्नेह था और गोस्वामी जी भी आर्य विद्वानों से मेल मिलाप रखते थे। मुलतान के आर्यों से भी आपका मिलवर्तन था। ऋषि का मूल्याङ्कन करते हुये गोस्वामी जी को किसी लेखक इतिहासकार ने कभी उद्धृत नहीं किया।

परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रम

०१.	ऋषि मेला	-	१७, १८, १९ नवम्बर-२०२३
०२.	सृष्टि सम्वत् की एकरूपता संवाद	-	१६ व १७ दिसम्बर-२०२३

कृपया भाग लेने के इच्छुक पूर्व से ही प्रतिभाग की सूचना दे देवें।

श्रेष्ठतम कर्म 'यज्ञ' की व्यापकता

[–प्रो० नरेश कुमार धीमान्, चेयर प्रोफेसर, महर्षि दयानन्द सरस्वती चेयर (यूजीसी), महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राजस्थान)]

[**निर्देश –** स्पष्टता के लिए सर्वत्र उदात्त अक्षर के ऊपर 'उ' (क) तथा निघात (= सन्नतर) अक्षर के नीचे अर्धचन्द्र (कु) का प्रयोग किया गया है। मन्त्र एवं पदपाठ में शिरोरेखा से ऊपर निर्दिष्ट अङ्क कण्डिका-मन्त्र के सूचक हैं तथा शिरोरेखा के समवर्ती अङ्क मन्त्र में पादविभाजन के सूचक हैं। छन्दोनाम के समक्ष कोष्ठक में प्रदत्त संख्या अभीष्ट छन्द की अक्षरगणना की परिचायक है। + अथवा - चिह्न के साथ प्रदत्त संख्या छन्द में एक या दो अक्षरों की न्यूनता वा अधिकता को प्रदर्शित करती है, जो छन्दोनाम के साथ उल्लिखित निचृत्-भुरिक्-विराट्-स्वराट् विशेषणों की पोषक है।]

[ऋषिः–परमेष्ठी प्रजापतिः, देवता–सविता, छन्दः–स्वराड् बृहती (३६+२), +ब्राह्म्युष्णिक् (४२), स्वरः–मध्यमः, +ऋषभः]

विषयः– अथोत्तमकर्मसिद्ध्यर्थमीश्वरः प्रार्थनीय इत्युपदिश्यते॥

(उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिये मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिए, इस विषय का प्रकाश यजुर्वेद के इस प्रथम मन्त्र में किया गया है।)

इषे त्वो[१]र्जे त्वा[२] वायव स्थ[३] देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण[४] ऽ आ प्यायध्वमघ्न्याऽ इन्द्राय भागं +प्रजावतीरनमीवाऽ अयक्ष्मा[५] मा व स्तेनऽ ईशत माघशꣳसो[६] ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात[४] बह्वी[७]र्यजमानस्य पशून् पाहि[५][८] ॥ यजु०१.१ ॥

[अनुदात्ताः-०, निघाताः-१९, उदात्ताः-२४, स्वरिताः-१६, प्रचयाः-२१ = ८० अक्षराणि, कण्डिका-मन्त्राः-५, पादाः-८]

पदपाठः– इषे। त्वा।[१] ऊर्जे। त्वा।[२] वायवः। स्थ।[३] देवः। वः। सविता। प्र। अर्पयतु। **श्रेष्ठतमायेति श्रेष्ठऽतमाय।** कर्मणे।[४] आ। प्यायध्वम्। अघ्न्याः। इन्द्राय। भागम्। **प्रजावतीरिति प्रजाऽवतीः।** अनमीवाः। अयक्ष्माः।[५] मा। वः। स्तेनः। ईशत। मा। **अघशꣳसऽइत्यघऽशꣳसः।**[६] ध्रुवाः। अस्मिन्। **गोपताविति गोऽपतौ।** स्यात। बह्वीः।[७] यजमानस्य। पशून्। पाहि[८]॥ १॥

[अनुदात्ताः-२५, निघाताः-२३, उदात्ताः-३२, स्वरिताः-१३, प्रचयाः-१२ = १०५ अक्षराणि, अवगृहीतपदानि-४, गलितपदानि-०, सकलपदानि-३५]

सम्पादकीय टिप्पणी– महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य में प्रदत्त 'संस्कृत पदार्थ' पर आधारित यह 'दयानन्द-भाष्य बोधामृत' कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। मन्त्र तथा पदपाठ में उदात्त एवं निघात स्वरों का चिह्नाङ्कन, अनुदात्तादि स्वरों का परिगणन, मन्त्र में अक्षरों की संख्या, कण्डिकामन्त्र एवं पादविभाजन आदि का निर्देश प्रथम बार हुआ है। शुद्धतम स्वराङ्कन तथा स्वरों के परिगणन के लिए लेखक ने स्वयं ही कम्प्यूटर-एप्लीकेशन का विकास किया है और वैदिक-स्वर पद्धति को गणितीय स्वरूप प्रदान किया है, जो इस क्षेत्र में अनूठा प्रयास

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
इ॒षे॒	अन्नविज्ञानयोः प्राप्तये॥ इषमित्यन्ननामसु पठितम्। (निघं०२.७) इषतीति गतिकर्मसु पठितम्॥ (निघं०२.१४) अस्माद्धातोः क्विपि कृते पदं सिध्यति॥	हे विज्ञानस्वरूप परमेश्वर! अन्न और अन्न की प्राप्ति के विज्ञान को प्राप्त करने के लिए
त्वा ऊ॒र्ज्जे॒	विज्ञानस्वरूपं परमेश्वरम्॥ पराक्रमोत्तमरसलाभाय॥ 'ऊर्ग्रसः'। (शत०५.१.२.८)॥	हम आपकी उपासना करते हैं। हे अनन्त पराक्रम और आनन्दरस से परिपूर्ण प्रभु! शक्ति, उत्साह तथा आपके उत्तमोत्तम आनन्दरस को पाने के लिए
त्वा वा॒यव॑ः	अनन्तपराक्रमानन्दरसघनम्॥ सर्वक्रियाप्राप्तिहेतवः स्पर्शगुणा भौतिकाः प्राणादयः॥ वायुरिति पदनामसु पठितम्। (निघं०५.४) अनेन प्राप्तिसाधका वायवो गृह्यन्ते॥ वा गतिगन्धनयोरित्यस्मात् कृवापा०। (उणा०१।१) अनेनाप्युक्तार्थो गृह्यते॥	हम आपकी स्तुति करते हैं। जिस प्रकार स्पर्श गुण से युक्त सभी भौतिक प्राण आदि समस्त क्रियाओं की प्राप्ति में कारणभूत होते हैं, वैसे ही हमारे समस्त कर्मों के शक्ति-स्रोत
स्थ	सन्ति॥ अत्र पुरुषव्यत्ययेन प्रथमपुरुषस्य स्थाने मध्यमपुरुषः॥	आप ही हैं।
स॒वि॒ता	सर्वजगदुत्पादकः सकलैश्वर्य्यवान् जगदीश्वरः॥	सकल जगत् का उत्पादक समस्त ऐश्वर्य्यों का स्वामी, जगदीश्वर,
दे॒वः	सर्वेषां सुखानां दाता सर्वविद्याद्योतकः॥ देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा यो देवः सा देवता। (निरु०७.१५)॥	समस्त सुखों का दाता तथा समस्त विद्याओं का प्रकाशक सविता देव

है। लेखक ने मन्त्र तथा पदपाठ में उदात्तादि स्वराङ्कन के शुद्ध प्रकाशन के लिए स्वयं ही Yajurved_MDSU01 नामक फोन्ट का निर्माण किया है। 'दयानन्द-भाष्य बोधामृत' में महर्षि के 'संस्कृत पदार्थ' को ही आधार बनाते हुए सहजता से बोधगम्य वाक्यरचना की गई है, जिससे सामान्य पाठक भी मन्त्र के भाव को सरलता से समझ सके। 'तत्त्वबोध' में लेखक ने मन्त्र-पदों में प्रयुक्त स्वरों के आधार पर उनके सूक्ष्मभावों को प्रकट करने का स्तुत्य प्रयास किया है, जो वेदार्थ में स्वरों की उपयोगिता को परिलक्षित करता है। आशा है महर्षि के भाष्य की पोषक इस नव-विधा का सुधी पाठक स्वागत करेंगे।

–डॉ. वेदपाल

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
श्रेष्ठतमाय	अतिशयेन प्रशस्तः श्रेष्ठः सोऽतिशयितः श्रेष्ठतमः तस्मै यज्ञाय॥	यज्ञ कहलाने योग्य लोकोपकारक श्रेष्ठतम
कर्मणे	कर्तुं योग्यत्वेन सर्वोपकारार्थाय॥	कर्मों की सिद्धि के लिए
वः	युष्माकम्॥	आपको, हमको सभी को
प्र, अर्पयतु	प्रकृष्टतया संयोजयतु॥	भली प्रकार प्रवृत्त करे। अर्थात् हम सदैव याज्ञिक भाव से श्रेष्ठ कर्म ही करें, जो हम सभी के लिए उपकारक हो, जिससे जड़-चेतन किसी की भी हानि न हो।
आ, प्यायध्वम्	आप्यायामहे वा॥ अत्र पक्षे व्यत्ययः॥	परस्पर इस उपकारी वृत्ति से आप हम सब नित्य उन्नति करें।
अघ्न्याः	वर्धयितुमर्हा हन्तुमनर्हा गाव इन्द्रियाणि पृथिव्यादयः पशवश्च॥ 'अघ्न्या इति गोनामसु पठितम्'। (निघं०२।११)॥	हम अपनी इन्द्रियों का दुरुपयोग न करके आत्मघाती न बनते हुए, भौतिक पदार्थों का अनावश्यक दोहन न करके पार्थिव-हत्या के पाप से बचते हुए तथा अपने स्वार्थ या मनोरंजन के लिए गाय आदि जीवों पर अत्याचार न करते हुए
इन्द्राय	परमैश्वर्य्ययोगाय॥	आपके परम ऐश्वर्य से अपने आप को जोड़ देने के लिए
भागम्	सेवनीयं भागानां धनानां ज्ञानानां वा भाजनम्॥	हम आपके भजनीय स्वरूप का सेवन करते हैं। आपकी कृपा से हमारी इन्द्रियाँ, सभी भोज्य पदार्थ तथा हमारे गाय आदि पशु
प्रजावतीः	भूयस्यः प्रजा वर्त्तन्ते यासु ताः॥ अत्र भूम्न्यर्थे मतुप्॥	निरन्तर शक्ति-सम्पन्न, प्रजावान्,
अनमीवाः	अमीवो व्याधिर्न विद्यते यासु ताः॥ 'अम रोगे' इत्यस्माद् बाहुलकादौणादिक 'ईवन्' प्रत्ययः॥	सामान्य रोगों से रहित, स्वस्थ तथा
अयक्ष्माः	न विद्यते यक्ष्मा रोगराजो यासु ताः॥ यक्ष इत्यस्मात्। अर्त्तिस्तु०। (उणा०१।१३८) अनेन 'मन्' प्रत्ययः॥	यक्ष्मा आदि असाध्य रोगों से रहित हों।

मन्त्र-पद	संस्कृत-पदार्थ (म० द० स०)	दयानन्दभाष्य-बोधामृत
व॒ः	ताः॥ अत्र पुरुषव्यत्ययः॥	आपके सान्निध्य से शक्ति और उत्साह पाकर पराक्रमी बने हम लोगों पर
स्तेन॑ः	चोरः॥	कोई चोर-वृत्ति का भ्रष्टाचारी शासक
मा, ई॒शत	निषेधार्थे॥ ईष्टां समर्थो भवतु॥ अत्र लोडर्थे लङ्। बहुलं छन्दसि [अष्टा०२.४.७३] इति शपो लुगभावः॥	कभी शासन करने में समर्थ न हो।
मा॑, अघशं॑सः	निषेधार्थे॥ योऽघं पापं शंसति सः॥	न ही पापाचार के प्रशंसक हम पर शासन करें।
अ॒स्मिन्	वर्त्तमाने प्रत्यक्षे॥	ऐसे निर्लोभ, प्रजा के हितचिन्तक शासक के नेतृत्व में;
गोप॑तौ	यो गवां पतिः स्वामी तस्मिन्॥	जो गो=इन्द्रियों का स्वामी अर्थात् जितेन्द्रिय हो, वही गो=पृथ्वी, राष्ट्र का नेतृत्व करने वाला हो क्योंकि उसी के नेतृत्व में प्रजा तथा गाय आदि जीवों की रक्षा और वृद्धि संभव है;
ब॒ह्वीः	बह्व॑यः अत्र॥ वा छन्दसि। (अष्टा०६।१।१०६) अनेन पूर्वसवर्णदीर्घादेशः॥	बहुसंख्य प्रजा
ध्रु॒वाः	निश्चलसुखहेतवः॥	निश्चल सुख को पाने वाली
स्या॒त	भवेयुः॥	हो।
यज॑मानस्य	यः परमेश्वरं सर्वोपकारं धर्मं च यजति तस्य विदुषः॥	हे प्रभु! सदैव तुझ परमेश्वर का ही यजन-पूजन करने वाले, सर्वोपकारी, धर्माचरण में प्रवृत्त इस उपासक के
प॒शून्	गोऽश्वहस्त्यादीन् श्रियः प्रजा वा॥ श्रीर्हि पशवः। (शत०१.६.३.३६) प्रजा वै पशवः॥ (शत०१.४.६.१७)॥	परिवार, धन-सम्पदा तथा गाय-घोड़े आदि पशुओं की चोरवृत्ति भ्रष्टाचारियों से
पा॒हि	रक्ष॥ अयं मन्त्रः। (शत०१.५.४.१-८) व्याख्यातः॥ १॥	सदैव रक्षा कीजिए।

तत्त्वबोध–

१. इषे – (इषु इच्छायाम्[१], इष गतौ[२] + क्विप् = इष् + ङे = इषे, 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः'[३], इत्यन्तोदात्तः = इषे) जीवन निर्वाह के लिए प्राथमिक आवश्यकता अन्न की होती है, स्वभावतः अन्न-प्राप्ति ही प्राथमिक इच्छा भी रहती है। अन्न से ही शरीर को गति प्राप्त होती है।

२. ऊर्जे – (ऊर्ज बलप्राणनयोः[४] + क्विप् = ऊर्ज् + ङे = ऊर्जे, 'सावेकाचस्तृतीयादिर्विभक्तिः'[५], इत्यन्तोदात्तः = ऊर्जे) अन्न केवल भूख की निवृत्ति मात्र के लिए न हो, अपितु वह ऊर्जा देने वाला भी होना चाहिए, जिससे शरीर में बल एवं प्राणशक्ति का संचार हो।

३. विवाह संस्कार में सप्तपदी के नाम से प्रचलित सात संकल्पों में 'इषे एकपदी भव' तथा 'ऊर्जे द्विपदी भव' का साक्षात् दर्शन इस मन्त्र में होता है। अप्रत्यक्ष रूप में शेष पाँच संकल्प भी इसी मन्त्र में निहित हैं।

४. श्रेष्ठतमाय, कर्मणे – श्रेष्ठतमाय, कर्मणे – अन्न से प्राप्त ऊर्जा का उपयोग किसके लिए हो? श्रेष्ठतम कर्म के लिए। शतपथ ब्राह्मण 'श्रेष्ठतम कर्म' को 'यज्ञ' नाम देता है – 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'[६]। इस 'यज्ञ' अर्थात् 'श्रेष्ठतम कर्म' को ही यजुर्वेद में प्रथम धर्म कहा गया है।[७]

वेद में की गई प्रार्थनाएँ केवल वचन मात्र की प्रार्थनाएँ नहीं हैं अपितु प्रार्थना के अनुरूप पुरुषार्थ करना भी आवश्यक है। प्रार्थना से उपासक को आत्मबल प्राप्त होता है, जिससे वह और भी उत्साह से 'श्रेष्ठतमाय, कर्मणे' उत्तमोत्तम कर्म के लिए प्रवृत्त होता है।

प्रशस्य + इष्ठन् = श्र + इष्ठन् (प्रशस्य श्रः[८]) = श्रेष्ठः। पुनः अतिशायन अर्थ में ही 'तमप्' प्रत्यय करके श्रेष्ठतम शब्द निष्पन्न होता है। 'इष्ठन्' प्रत्यय नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'[९] सूत्र से 'श्रेष्ठ' शब्द आद्युदात्त हुआ, पुनः 'तमप्' प्रत्यय पित् होने से तथा प्रयुक्त 'ङे' विभक्ति भी पित् होने 'अनुदात्तौ सुप्पितौ'[१०] सूत्र से अनुदात्त हुए और इस प्रकार 'श्रेष्ठतमाय' यह सम्पूर्ण पद आद्युदात्त हुआ। 'कर्मणे' पद में डुकृञ् करणे धातु से कर्म में 'सर्वधातुभ्यो मनिन्'[११] सूत्र से मनिन् प्रत्यय होकर 'कर्मन्' शब्द बना। चतुर्थी विभक्ति में प्रयुक्त 'ङे' प्रत्यय अनुदात्त है, 'मनिन्' प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'[१२] से 'कर्मणे' शब्द आद्युदात्त हुआ। इसप्रकार 'श्रेष्ठतमाय, कर्मणे' ये दोनों पद ही विशेषण विशेष्य बनकर सम्प्रदान में प्रयुक्त चतुर्थी विभक्ति की प्रधानता न बताकर श्रेष्ठतम कर्म की प्रधानता को अभिव्यक्त कर रहे हैं।

५. आ, प्यायध्वम् – यज्ञ ही क्यों? क्योंकि परस्पर सर्वविध उन्नति का आधार यह 'यज्ञ' अर्थात् 'श्रेष्ठतम कर्म' ही होता है। वेद में प्रयुक्त 'यज्ञ' शब्द बहुत व्यापक एवं उदात्त अर्थ वाला है। इसे केवल 'अग्निहोत्र' शब्द के साथ जोड़कर देखना न्यायसंगत नहीं है। यज्ञीय व्यवहार में वे सब संभावनाएँ निहित होती हैं, जिनसे उन्नति के समस्त द्वार खुल जाते हैं। शतपथकार ने 'श्रेष्ठतम कर्म' को 'यज्ञ' नाम बहुत ही

---

१. दिवादिगण, परस्मैपदी।

२. तुदादिगण, परस्मैपदी। ३. अष्टा० ६.१.१६२॥

४. चुरादिगण, परस्मपदी। ५. अष्टा० ६.१.१६२॥

६. 'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म' – शत० ब्रा०१.७.१.५॥

७. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥
–यजु० ३१.१६॥

८. अष्टा० ५.३.६०॥

९. अष्टा० ६.१.१९७॥

१०. अष्टा० ३.१.४॥

११. उणादि० ४.१४५॥

१२. अष्टा० ६.१.१९७॥

सार्थक दिया है। 'यज्ञ' शब्द में देवपूजा, दान तथा सङ्गतिकरण का भाव निहित है। सामाजिक दृष्टि से यज्ञीय व्यवहार से तात्पर्य ऐसे व्यवहार से है जिसमें सब परस्पर एक-दूसरे का आदर करते हों (१); एक-दूसरे के लिए त्याग करते हों, ऐसा त्याग, ऐसा दान, ऐसा सहयोग जिसके बदले में कुछ भी लेने की कामना न हो (२) और परस्पर मेल-मिलाप, संगठित रहने के भाव की अभिवृद्धि हो (३)। ऐसी तीन सम्पत्तियों से युक्त यज्ञीय व्यवहार से ही विश्व में, राष्ट्र में, समाज में, परिवार में तथा व्यक्तिगत जीवन में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव चरितार्थ होता है। 'श्रेष्ठ' इतने से ही बात कही जा सकती थी, परन्तु अतिशायन अर्थ में ही पुनः 'तमप्'[१३] प्रत्यय जोड़कर कहने से कथ्य में और भी बल आ गया है। श्रेष्ठतम अर्थात् श्रेष्ठों में भी श्रेष्ठ। यज्ञ की तीनों सम्पत्तियों में से प्रत्येक स्वयं में श्रेष्ठ है, परन्तु जहाँ ये तीनों समेकित होकर उपस्थित होती हैं, वह व्यवहार, वह कर्म ही 'श्रेष्ठतम' कोटि में आता है, उसे शतपथकार 'यज्ञ' शब्द से संबोधित करते हैं।

लोक में धन-सम्पन्न व्यक्तियों के लिए 'श्रेष्ठ' शब्द का तत्सम 'सेठ' शब्द प्रचलित है। निश्चित ही 'सेठ' शब्द का सम्मानजनक सम्बोधन समाज ने ऐसे यज्ञीय व्यवहार वाले धनपतियों के लिए दिया होगा जो अपने धन का सदुपयोग समाज में यज्ञीय सम्पत्तियों के विस्तार में करते रहे होंगे। वे अपने अर्जित धन से विद्वानों का आदर, लोकोपकार के लिए पेयजल की व्यवस्था, तालाब, शिक्षणालय, वेदप्रचार आदि के लिए दान तथा समाज को संघटित करने के प्रयासों के लिए करते रहे होंगे, तभी तो उन्हें उनके यज्ञीय व्यवहार के अनुरूप 'सेठ' '=श्रेष्ठ' जैसा पवित्र सम्बोधन प्राप्त हुआ है। आरम्भ में यह शब्द यौगिक अर्थ वाला ही था, शनैः शनैः यह सामान्य धनपतियों के लिए भी प्रयोग किया जाने लगा, भले ही वह यज्ञीय व्यवहार के विपरीत असहायों के तिरस्कार में संलग्न, सामाजिक शोषण में लिप्त तथा विघटनकारी प्रवृत्तियों को बढ़ाने में ही अपने धन का व्यय क्यों न करता हो।

६. अघ्न्याः, इन्द्राय – परमात्मा के ऐश्वर्य से जुड़ने की योग्यता 'अघ्न्य' अर्थात् अहिंसक होना है। निघण्टुकार इस शब्द का पाठ 'गो' नामों में करता है।[१४] 'गो' के अनेक अर्थ हैं– इन्द्रिय, पृथिवी तथा गाय आदि। यदि परमात्मा के ऐश्वर्य का भागी हम स्वयं को बनाना चाहते हैं तो हमें इन तीनों की हिंसा से बचना चाहिए। जब हम अपनी इन्द्रियों का दुरुपयोग नहीं करेंगे, धरती और इसके पदार्थों का अनावश्यक दोहन नहीं करेंगे तथा पशुओं पर अत्याचार नहीं करेंगे तो स्वभावतः इन तीनों के स्वस्थ एवं रोगरहित बने रहने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं। वास्तव में किसी भी प्रकार की हिंसा करना यज्ञीय व्यवहार की उल्लंघना ही है।

७. मा – वेद में दो प्रकार के 'मा' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। आद्युदात्त (मा) और सर्वानुदात्त (मा)। आद्युदात्त 'मा' निपातसंज्ञक है[१५] , जो निषेधार्थक होता है और सर्वानुदात्त 'मा', 'माम्' (= मुझको) का संक्षिप्त रूप है।[१६] यहाँ आद्युदात्त 'मा' निषेध अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मन्त्र में 'त्वा' तथा 'वः' पद भी क्रमशः 'त्वाम्' तथा 'युष्माकम्' के संक्षिप्त रूप हैं [१७], जो पादादि में वर्तमान

---

१३. अतिशायन अर्थ में 'इष्ठन्' तथा 'तमप्' दोनों प्रत्ययों के प्रयोग के विषय में महाभाष्यकार का वचन है– "तदन्ताच्च स्वार्थे छन्दसि दर्शनं श्रेष्ठतमायेति - (भाष्यम्) तदन्तादाति-शायिकान्तात्स्वार्थे छन्दसि आतिशायिको दृश्यते - देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे॥" –अष्टा० ५.३.५५ भाष्य॥ लोक मे भी अनेकत्र ऐसे शिष्ट प्रयोग मिलते हैं– अर्धं आर्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा॥ – महाभा० आदि० ७४.४१॥

१४. निघं० २.११॥

१५. निपाता आद्युदात्ताः॥ फिट्० ४.१२॥

१६. त्वामौ द्वितीयायाः॥ अष्टा० ८.१.२३॥, अनुदात्तं सर्वमापादादौ ॥ ८.१.१८॥

१७. त्वामौ द्वितीयायाः॥ अष्टा० ८.१.२३॥, बहुवचनस्य वस्नसौ ॥ अष्टा० ८.१.२३॥

न होने से सर्वानुदात्त हैं।[१८]

८. गोपतौ – गवां पतिः गोपतिः। गम् + डो = गो, 'गमेर्डो'[१९]। प्रत्ययस्वर से 'गो' शब्द अन्तोदात्त है। ऐश्वर्यवाचक पति शब्द के साथ षष्ठी तत्पुरुष समास को प्राप्त होकर 'गोपतिः' शब्द 'पत्यावैश्वर्ये'[२०] सूत्र से आद्युदात्त हुआ। वेद में प्रयुक्त सभी पद यौगिक होते हैं, अतः उनके गूढार्थ को जानने के लिए सर्वप्रथम प्रयुक्त पद के प्रकृति-प्रत्यय को अवश्य जानना चाहिए। फिर उसी के अनुरूप उसमें प्रयुक्त स्वर को देखना चाहिए। पद के जिस अंश पर उदात्त स्वर होता है, उसी अंश का अर्थ उस पद में प्रधान होता है, यह वेदार्थ करने में सामान्य नियम है। केवल लौकिक शब्दकोषों के आधार पर वेदमन्त्रों का अर्थ करना न्यायसंगत नहीं होता। यहाँ 'गोपतौ' पद में 'गो' अंश पर उदात्त स्वर होने से इन्द्रियबल की प्रधानता है। राजा की योग्यता इन्द्रियबल से ऐश्वर्यवान् होने में है, केवल सत्तावान् होने में नहीं। यदि सत्तावान् होने मात्र से वेद का तात्पर्य होता तो 'गोपति' शब्द 'समासस्य'[२१] सूत्र से अन्तोदात्त होकर 'गोपतौ' ऐसा प्रयुक्त होता।

इस प्रकार राजा की योग्यता 'गोपति' है; गोपति अर्थात् अपनी इन्द्रियों के बल से ऐश्वर्यशाली। जितेन्द्रिय राजा ही सदाचारण संपन्न होता है, वह किसी भी प्रकार का भ्रष्टाचार न स्वयं करता है, न अपने सहयोगियों अथवा प्रजा को ही इसकी अनुमति देता है। ऐसा शासक ही राष्ट्र और प्रजा के लिए निश्चल सुख और उनकी सर्वात्मना उन्नति का कारण बनता है।

९. यजमानस्य – यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु + शानन् (पूङ्-यजोः शानन्)[२२]। यहाँ भी 'शानन्' प्रत्यय के नित् होने से 'ञ्नित्यादिर्नित्यम्'[२३] सूत्र से 'यजमानस्य' पद आद्युदात्त हुआ। यहाँ यज् धातु के अर्थ की प्रधानता है, वर्तमानकालिक 'शानन्' प्रत्यय की नहीं। यजमान अर्थात् "परस्पर आदर करने वाला, विनिमय के भाव से शून्य त्यागपूर्ण व्यवहार करने वाला था परिवार समाज आदि में सबको संघटित करके चलनेवाला" –इन तीन विशेषताओं से युक्त यज्ञीय व्यवहार में निरन्तर संलग्न रहनेवाला उपासक।

१०. मन्त्र में "स्थ, अर्पयतु, प्यायध्वम्, ईशत, स्यात, पाहि" –ये छः तिङ्-ङन्तपद = क्रियापद प्रयुक्त हुए हैं। इन सभी तिङ्-ङन्त पदों से पूर्व कोई-न-कोई अतिङ्-ङन्त पद विद्यमान होने से ये सभी सर्वानुदात्त हो गए।[२४] क्रियापदों का इस प्रकार सर्वानुदात्त होना वैदिक व्याकरण का सामान्य नियम है। मन्त्र में यदि क्रियापद सर्वानुदात्त होकर प्रयुक्त हुआ है तो पदपाठ में भी उसे सर्वानुदात्त ही प्रदर्शित करने का नियम है, उसे उसके मूल-स्वर के साथ प्रदर्शित नहीं किया जाता। उपर्युक्त क्रियापदों के मूलस्वर इस प्रकार हैं – "स्थ, अर्पयतु, प्यायध्वम्, ईशत, स्यात, पाहि"।

११. यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में 'श्रेष्ठतम कर्म' अर्थात् यज्ञीय व्यवहार को समस्त उत्तम कर्मों की सिद्धि का हेतु बताया है। जिसकी पुष्टि अन्तिम अध्याय में पठित मन्त्र से होती है।[२५] जिसमें आजीवन श्रेष्ठतम यज्ञीय कर्म करने का आदेश दिया गया है, ऐसा कर्म जिसको करते हुए कर्ता, कर्ता होकर भी अकर्ता बन जाता है और उसमें कर्मजन्य किसी दोष का लेप नहीं होता। ये यज्ञीय कर्म ही उस उपासक 'नर' की मुक्ति का साधन बन जाते हैं, अन्य कोई मार्ग भी तो नहीं।

---

१८. अनुदात्तं सर्वमापादादौ ॥ ८.१.१८॥

१९. उणादि०२.६७ २०. अष्टा० ६.२.१८

२१. अष्टा० ६.१.१९७॥ २२. अष्टा० ६.१.२२३॥

२३. अष्टा० ३.२.१२८॥

२४. तिङ्-ङतिङः॥ अष्टा० ८.१..२८॥

२५. "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥" –यजु० ४०.२॥

ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १७, १८ व १९ नवम्बर (शुक्रवार, शनिवार व रविवार) २०२३ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्यजगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की दुकान लगती हैं। इस वर्ष से स्टॉल किराया २०००=००रूपये प्रति स्टॉल किया गया है। खुले में या अपनी इच्छानुसार स्टॉल लगाना निषिद्ध रहेगा। आप अपना पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य में सहयोग करावें। जिन महानुभावों की पहले राशि जमा होगी उस क्रम से स्टॉल का निर्धारण होगा। ऋषि मेला-२०२३ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन में तीन आधार रहेंगे- १- आर्य धार्मिक पुस्तक, २- हवन सामग्री, ओ३म् ध्वज आदि, ३- दवाईयाँ। आपको जितनी स्टॉल की आश्यकता है उसी अनुरूप राशि बैंक ड्रॉफ्ट या नगद या ऑनलाइन जमा करावें।

स्टॉल सुविधाः- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- १. स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। **४.** स्टॉल व्यवस्थापक को राशि की रसीद दिखाकर स्टॉल संख्या प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। **५.** आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित की जायेगी। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोटः**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

सम्पर्क-देवमुनि- ७७४२२२९३२७

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों से निवेदन

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान अजमेर में आने वाले सज्जनों के निवास-भोजन की व्यवस्था की जाती है। यह व्यवस्था ठीक से चल सके, इसके लिए आप अतिथियों के सहयोग की अपेक्षा है। जो भी अतिथि यहाँ कम या अधिक दिन रुकना चाहें तो आने के कम से कम दो दिन पूर्व परोपकारिणी सभा या ऋषि उद्यान के कार्यालय में सूचना देकर स्वीकृति अवश्य प्राप्त कर लेवें। सूचना में अपना नाम, पता, दूरभाष व साथ में आने वाले व्यक्तियों की संख्या, उनकी अवस्था (आयु), स्त्री या पुरुष सहित बता देवें। शौचालय की सुविधा भारतीय या पाश्चात्त्य अपेक्षित है? आपके यहाँ पहुँचने व प्रस्थान का दिन और समय तथा भोजन ग्रहण करेंगे या नहीं, यह भी स्पष्टता से बता देवें। आधार कार्ड की छाया प्रति साथ लाएं। यह सब लिखकर व्हाट्सएप पर भेज देंगे तो श्रेष्ठ है।

आपकी सूचनाओं के होने पर आपके लिए व्यवस्था समुचित की जा सकेगी। अचानक बिना सूचना के आने पर होने वाली असुविधा व कष्ट से आप बच सकेंगे। साथ ही इससे यहाँ के कार्यकर्त्ताओं को भी अनावश्यक असुविधा से बचाने में सहायता होगी। आशा है आपका समुचित सहयोग मिल सकेगा। **सूचना हेतु सम्पर्क-**

ऋषि उद्यान कार्यालय - ०१४५-२९४८६९८ परोपकारिणी सभा कार्यालय - ०१४५-२४६०१६४
व्हाट्सएप - ८८९०३१६९६१ सम्पर्क का समय - ११ से ४ बजे तक
(किसी एक सम्पर्क पर सूचना देना पर्याप्त रहेगा) निवेदक - मन्त्री

एक पुरानी उलझन (२)

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय

टिप्पणी : संस्कार विधि के कुछ स्थलों को लेकर विद्वानों में मतभेद रहा है। पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय के लिखने के पश्चात् यह चर्चा अधिक प्रसृत हुई। आर्यजगत् के प्रमुख शास्त्रार्थ महारथी श्री ठाकुर अमरसिंह ने उपाध्यायजी के लेख के उत्तर में लेख लिखकर समाधान प्रस्तुत किया था। लगभग ६० वर्ष पूर्व का यह लेख यथातथ रूप में पुनः प्रकाशित है - सम्पादक

गताङ्क अक्टूबर द्वितीय २०२३ का शेष भाग...

श्री पण्डित गंगा प्रसाद जी उपाध्याय-

योग्य सम्पादक ''श्री पण्डित अमरसिंह जो आर्य पथिक'' ने मेरे उत्तर का जो प्रत्युत्तर दिया है वह ''मेरी समझ में नहीं आया'' मुझे यह आश्चर्य भी हुआ कि ऐसे तार्किक विद्वान् की लेखनी से युक्ति-शून्य हेत्वाभासों का यह आविर्भाव कैसे सम्भव हो सका? पहले यह लिखना कि ''तीन लकड़ी आठ-आठ अंगुल को घृत में डुबो उनमें से ''एक-एक'' नीचे लिखे ''एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा'' को अग्नि में चढ़ावे'' और फिर शीघ्र ही चार मन्त्रों से तीन आहुतियों का विधान करना साक्षात् ''वदतो व्याघात'' या ''परस्पर विरोध'' है। दोनों आदेशों का पालन नहीं हो सकता। एक का होगा या किसी का भी नहीं। आपने इस परस्पर विरोध को मिटाने या समन्वित करने के लिए दो उपाय किये है। प्रथम तो पहले आदेश को 'विधि' और दूसरे को 'अपवाद' माना है। विधि-वाक्य वही होता है जो सामान्यतः अधिकांश स्थानों में लागू होता है। मैं भी इसको विधिवाक्य ही मानता हूं इसी लिए एक-एक मन्त्र से एक-एक आहूति के पक्ष में हूं, मैं या आप किसी स्थान में इसको लागू नहीं मानते अतः 'विधि' कैसा? अपवाद वह होता है जो किसी विशेष अवस्था या अवसर पर विधि से अन्यथा निर्दिष्ट हो। यदि पहले तीन मन्त्रों से तीन आहुतियों का सामान्य अवस्था में निर्देश करके किसी विशेष स्थान पर चार मन्त्रों से तीन आहुतियां देने का विधान किया जाता तो इसको अपवाद कह सकते थे। जब आप तीन मन्त्रों में तीन आहुतियां देने के निर्देश को कहीं नहीं मानते तो 'अपवाद' कैसा? विधि का क्षेत्र अपवाद के क्षेत्र से अधिक व्यापक हुआ करता है। सब शास्त्रों में और विशेषकर अष्टाध्यायी में इसके अनेक उदाहरण मिलेंगे। आपको बताने की क्या आवश्यकता है? साधारण विद्यार्थी भी समझते हैं, अपवाद विधि का पोषक होता है घातक नहीं।

अंग्रेजी में कहते हैं कि एक्सेप्शन प्रूव्ज दी रुल (Exception proves the rule) अर्थात् 'अपवाद' विधि के अस्तित्व का प्रमाण है। यदि विधि नहीं हो तो अपवाद न होता। अपवाद दिया तो विधि सिद्ध हो गई। इसलिये विधि-अपवाद-सम्बन्ध की इस स्थल पर कल्पना करना हो असमीचीन है। सर्व समीचीन है। इसकी यहाँ झलक तक भी नहीं। दूसरा उपाय आपने यह दिया है कि- ''समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। अस्मिन् हव्या जुहोतन। स्वाहा।। इदमग्नये इदन्नमम्।'' जाप का मन्त्र इसको मानकर दूसरी समिधा को ''सुसमिद्धाय'' इत्यादि से चढ़ाया जाय। यह 'जाप' की कल्पना आपकी कल्पना मात्र है और क्लिष्ट-कल्पना है। ऋषिवर को यह इष्ट है ही नहीं। यदि इष्ट होती तो ''स्वाहा इदमग्नये इदन्नमम्'' तथा 'इससे' यह तीन शब्द न देते। यह ठीक है कि 'स्वाहा' शब्द यजुर्वेद के कई मन्त्रों के बीच में या अन्त में आया है और उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जहाँ आहुति देने का विधान नहीं है, परन्तु 'समिधाग्नि' मन्त्र में 'स्वाहा' या 'इदन्नमम्' मन्त्र का भाग है ही नहीं, यह मन्त्र यजुर्वेद

के तीसरे अध्याय का पहला है और ऋग्वेद के आठवें मण्डल के ४४वें सूक्त का भी पहला मन्त्र है' जहां किसी स्थल पर भी 'स्वाहा' शब्द मन्त्र का अङ्ग नहीं है। बाहर से यह शब्द जोड़े ही वहां जाते हैं जहां आहुति देना इष्ट हो। यदि श्री स्वामी जी को 'जप' इष्ट होता तो कुछ संकेत करते । इसलिये यदि आप इस मन्त्र को केवल 'जाप' में प्रयोग करते हैं तो स्वामी जी महाराज के अभिमत निर्देश का विरोध करते हैं। 'फर्दे जुमं उल्टी तो नहीं है' बिल्कुल सीधा है, मुजरिम जो चाहे सो कह सकता है।

श्री स्वामी जी ने जो कल्प निर्धारित किया था वह तो बहुत सुन्दर था। असली कॉपी में वही था, तीन मन्त्र स्पष्ट और तीन समिधाएँ स्पष्ट और उनका प्रयोग स्पष्ट। 'कल्प' को बिगाड़ा तो उसने जिसने प्रमाद से अकारण बीच में 'अयन्त इध्म' वाला मन्त्र प्रक्षिप्त कर दिया। एक अच्छे कल्प की सुन्दरता नष्ट हो गई। परस्पर विरोध भी और असंगति भी और सभी विचारकों के लिये उलझन। गाय ने तो दूध अच्छा दिया था। पानी मिलाने वाले ने मिलाया और मिट्टी ऊपर से मिल गई। दूध का गुण बिगड़ गया और गाय की बदनामी हुई। मुझे तो यह ऋषि की वास्तविक भक्ति प्रतीत नहीं होती। ऋषिवर का तो स्पष्ट आदेश है कि बुद्धि के छन्ने से छानकर दूध पिये। ऋग्वेद भी कहता है कि ''सक्तुमिव तितउना'' अर्थात् जैसे सत्तू को चलनी से छानकर खाते हैं इसी प्रकार ग्रन्थों को भी छान कर मानना चाहिये। मैंने कभी यह संकेत नहीं किया कि आपने गृह्य-सूत्रों आदि को नहीं देखा। देखा तो मैंने भी है, आपके बराबर न सही। पाठ्य ग्रन्थों की सूची देने से क्या लाभ? मैं संस्कारविधि के भी असाधारण मूल्य को स्वीकार करता हूँ। परन्तु दूध में पढ़ी हुई मिट्टी को दूध नहीं मानता। मैंने श्री रामावतार शर्मा का लेख भी वेदवाणी में पढ़ा था और उसका उत्तर भी उसी पत्र को भेजा था अब यह लेख अन्यत्र भी छपा है। मैं अलग-अलग हर पत्र को नहीं लिख सकता। यदि सम्पादक महोदय जनता के समक्ष दोनों पक्ष रखना स्वीकार करेंगे तो मेरे उत्तर को भी छाप देंगे। मैंने उत्तर में केवल प्रकृत-विषय तक ही अपने को सीमित रखा है। यदि अन्य बातों की भी मीमांसा की जायगी तो विषयान्तर हो जायेगा।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी -

श्रद्धेय श्री पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय ने 'अयन्त इध्म आत्मा' इस मन्त्र से समाधान के विरुद्ध एक लेख आर्यमित्र में छपाया था। उसमें उन्होंने अपने पक्ष में और इस मन्त्र से समिदाधान के विरुद्ध सात हेतु दिये थे। मैंने उन सातों हेतुओं की हेत्वाभास मानकर सातों हेतुओं का खण्डन आर्यसंसार मासिक पत्र में प्रकाशित कराया। श्री उपाध्यायजी ने अपने हेतुओं की पुष्टि और मेरी आलोचना के खण्डन में कुछ न लिखकर मेरी इस मान्यता पर आपत्ति लिखकर आर्यसंसार में छपने को भेजी कि- ''संस्कारविधि ऋषि दयानन्द का बनाया सर्वोत्तम गृह्यसूत्र है।'' मैंने इसका उत्तर 'आर्यसंसार' के उसी अंक में दे दिया। पीछे श्री उपाध्याय के दो लेख फिर पढ़ने को मिले (१) - 'मेरी समझ में नहीं आया' इस शीर्षक से 'आर्यसंसार' में (२) - 'उलझन अभी बनी है।' इस शीर्षक से 'वेदवाणी' में। इन दोनों लेखों को पढ़कर मुझको बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे आश्चर्य के कुछ कारण ये हैं-

१-जब कि श्री उपाध्यायजी के सातों हेतुओं का खण्डन हो गया और एक प्रकार से उसको माननीय उपाध्यायजी ने स्वीकार भी कर किया, क्योंकि उनके पक्ष और मेरी आलोचना के विरुद्ध कुछ न लिखकर एक और नये प्रश्न पर ही उन्होंने लेख लिखकर भेजा था। फिर 'समझ में न आने' और 'उलझन बनी रहने' का क्या कारण शेष रह गया? उन हेतुओं पर संक्षेप से फिर दृष्टि डाल ली जाय जो ऊपर से गिनने में सात से पर थे अधिक।

२- प्रथम और सबसे बड़ा हेतु यह या असल कॉपी में 'अयन्त इध्म' मन्त्र नहीं था।

इस हेतु पर मैंने ६ प्रश्न किये थे जिनमें से एक का भी उत्तर श्री उपाध्याय ने नहीं दिया। उन पर विचार करने से सारी उलझन सुलझ जाती। कम से कम इतना ही विचारकर लिया जाए कि यदि असल कॉपी में यह मन्त्र नहीं था और प्रेस कॉपी में बढ़ा दिया गया और हाशिये पर ही बढ़ाया गया, तो इसमें आपत्ति क्या है? या असली कॉपी ईश्वरीय इलहाम थी जो उसमें कभी भी कुछ बढ़ाया नहीं जा सकता था? यदि आप कहें यह ऋषि ने नहीं बढ़ाया या बढ़वाया तो मैं पूछता हूं कि आपके पास इसका क्या प्रमाण है? जब कि ऋषि के पत्रों ये स्पष्ट है कि यह भाग स्वयं ऋषि ने छपने को भेजा था। एक नया प्रश्न जो श्री उपाध्याय ने उठाया है वह यह है कि असली कॉपी लिखते समय ऋषि, ऋषि निर्भ्रान्त या साक्षात्कृतधर्मा न थे और ये गुण उनमें प्रेस कॉपी बनाते समय ही आ गये? इस प्रश्न के साथ ही श्री उपाध्यायजी के प्रथम और सबसे प्रबल हेतु को जोड़ लिया जाए जिसको सब लेखों में अब तक लिखा है असल कॉपी में नहीं था। तो ऋषि दयानन्द के लिखे सारे ग्रन्थ श्री उपाध्यायजी के शब्दों में कूड़ा-करकट हो जायेंगे, क्योंकि प्रथम बार की संस्कार विधि जो ऋषि ने सं. १९३२ विक्रमी में लिखी थी वह सं. १९४० में नहीं रहीं' उसमें बहुत कुछ परिवर्तन कर दिया और स्वामीजी ने स्वयं किया। तथा सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण सं. १९३१ विक्रमी में हुआ था और वह ऋषि ने स्वयं१९३९ विक्रमी में बदल दिया।' श्री उपाध्यायजी के इन हेतुओं से पहले संस्करण ही प्रामाणिक ठहरेंगे और अन्य दूसरे संस्करण ''कूड़ा-करकट निकाल फेंकने के योग्य ठहरेंगे।''

दूसरे संस्करणों में जो कुछ पहलों से अधिक या भिन्न है वह अमान्य है, क्योंकि वह पहले संस्करण में नहीं था और यह प्रश्न श्री उपाध्यायजी का इन संस्करणों को कूड़ा-करकट बना देगा कि-''क्या पहले सत्यार्थ प्रकाश और पहली संस्कारविधि के लिखते व छपते समय ऋषि या निर्भ्रान्त या साक्षात्कृतधर्मा न थे और ये गुण दूसरे संस्करणों के समय ही आ गये?'' महान् आश्चर्य है कि इतने बड़े दार्शनिक विद्वान् और महान् लेखक की लेखनी से यह क्या लिखा जा रहा है? दूसरा कारण मेरे आश्चर्य का यह है कि- ''ये जितने बड़े-बड़े पण्डित हैं इनमें से अधिक पण्डित उलझनें सुलझाने के स्थान में उलझनें उत्पन्न करने में क्यों लग गए हैं?'' हमारी यज्ञशालाएँ प्राय: सर्वत्र नये-नये शास्त्रार्थ शूरों का संग्राम क्षेत्र बन रही है। सामग्री किन मन्त्रों से डाली जानी चाहिये किन से नहीं इस पर सर्वत्र झगड़ा होता है। इसी प्रकार कई और भी प्रश्न है। एक नया झगड़ा यज्ञशालाओं में 'अयन्त इध्म' इस मन्त्र से समिदाधान का और खड़ा हो जाएगा।

ये पंक्तियाँ तो उपाध्यायजी ने सर्वथा वैसे ही लिख दी हैं कि- ''जब कभी भूल सामने आती है तो कहने लगते हैं कि ऋषि थे, साक्षात्कृतधर्मा थे, निर्भ्रान्त थे। अत: यह भूल भूल नहीं है'' आदि। 'अयन्त इध्म' इस मन्त्र पर श्री उपाध्यायजी के लेख के विरुद्ध मैंने लिखा है और'' श्री पं. रामावतारी पञ्चतीर्थ ने। हमारे दोनों के ही लेखों में यह हेतु कहीं नहीं दिया गया है। न हमारे दोनों के लेखों में यह कहीं लिखा गया है कि ऋषि दयानन्दजी के ग्रन्थों में संशोधन नहीं होना चाहिए। मेरा कहना केवल यह है कि- ''भूल का नाम लेकर मूल को न मिटाय जाए'' और कूड़ा-करकट कहकर लाभदायक शिक्षाप्रद वास्तविक वाक्यों को न निकाल दिया जाए। श्री उपाध्याय जी जिनके लिए अगाध श्रद्धा रखता हूं और लोग भी रखते हैं उनका उठाया आन्दोलन उपेक्षा करके टाल देने योग्य नहीं है। उससे समाज में बहुत झगड़ा बढ़ सकता है जैसा कि- श्री उपाध्यायजी का हेतु रहित आग्रह है इससे और अधिक भय होता है, क्योंकि सर्वसाधारण जन हेतुओं को अधिक नहीं समझते हैं आग्रहों से शीघ्र आग्रहीत हो जाते हैं। श्री उपाध्यायजी

का यह कोरा आग्रह है कि असल कॉपी में यह मन्त्र नहीं था। इसलिए इसको मानना अनार्षपन और हठ है। इस आग्रह में उपाध्यायजी कहाँ तक आगे चले गये हैं इसके कुछ नमूने उनके लेखों में नये देखने योग्य हैं यथा-

(१) प्रेस कॉपी में 'अचानक बिना कारण के हाशिये पर मन्त्र का आ जाना जो यजुर्वेद के उन तीनों मन्त्रों से सर्वथा भिन्न है सन्देह को पक्का करने के लिए पर्याप्त है।' (२) विशेष कर उस समय जब प्रेस कॉपी का अधिकतर भाग ऋषिवर की मृत्यु के पीछे लिखा गया हो। (३) आप जो 'सात बार अयन्त.' मन्त्र को दहराया हुआ देखते हैं ये प्रतीकें तो पीछे से जोड़ी गई है। (४) यदि 'अयन्त.' इस मन्त्र का प्रक्षेप न हुआ होता तो प्रतीकों मे 'समिधा.' आदि ऐसा लिखा होता। ये चारों वाक्य श्री उपाध्यायजी के वेदवाणी वाले लेख में से लिए हैं।

तनिक विचार करिये कि, ये वाक्य क्या प्रकट करते हैं? प्रथम सन्दर्भ में- ''अचानक बिना कारण के हाशिये पर मन्त्र का आ जाना'' यह वाक्य श्री उपाध्यायजी के आग्रह को नंगा कर रहा है। क्या यह मंत्र यहाँ ''अचानक और बिना कारण'' आ गया है? यदि अचानक और बिना कारण आया था तो गर्भाधान से अन्त्येष्टि पर्यन्त किसी भी संस्कार का कोई भी मंत्र यहां क्यों नहीं आया? वही मंत्र अचानक यहां कैसे आ गया जो समिधा का स्पष्ट मंत्र है और जिसमें समिधा का ही वाचक 'इध्म' शब्द स्पष्ट रूप से विद्यमान है और जो मन्त्र अपना विनियोग आप ही बता रहा है। उस मंत्र को ''अचानक बिना कारण'' बताना कितना बड़ा हेतु रहित आग्रह है यह इस वाक्य में पूर्णरीत्या स्पष्ट है। इससे अगले तीनों वाक्य यदि सत्य मान लिए जाएँ तो संस्कारविधि संशोधन करने के योग्य नहीं रहती है। नष्ट करने और जला देने के योग्य ही ठहरेगी। यह बात पौराणिक लोग लिखा और हमारे सम्मुख शास्त्रार्थों में कहा करते हैं कि- ''सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि दोनों ग्रंथों के दोनों दूसरे संस्करण स्वामी दयानन्दजी की मृत्यु के पीछे आर्यसमाजियों ने बनाकर छपा लिए हैं।'' अब अपने एक जगत् प्रसिद्ध महापण्डित को लेखनी से लिखा हुआ हम यह पढ़ रहे हैं कि-''संस्कारविधि की प्रेस कॉपी का अधिकांश भाग ऋषि की मृत्यु के पीछे लिखा गया है।'' और उसमें 'अयन्त इध्म' इस मन्त्र को पीछे से सात बार जोड़ा गया है। पाठकगण! यह मंत्र समिधा के लिए संस्कारविधि में स्पष्टरूपेण पुंसवन संस्कार, जातकर्म संस्कार, वेदारम्भ संस्कार, विवाह संस्कार में दो बार और वानप्रस्थ संस्कार में। इस प्रकार छः स्थलों में सामान्य प्रकरण से अतिरिक्त उल्लिखित और निर्दिष्ट है।

श्री उपाध्यायजी कहते हैं कि इन सारे स्थलों में यह पीछे से जोड़ा गया है। श्री उपाध्यायजी के शब्दों में यह प्रक्षेप और थेगड़ी है जो लगभग सारी संस्कारविधि में है सामान्य प्रकरण से वानप्रस्थ तक लगी हुई एक थेगड़ी का पता तो अभी सम्मुख आया है। भगवान् जाने ऋषि की मृत्यु के पीछे और क्या-क्या कहां-कहां पीछे से जोड़ा होगा। इसके संशोधन का अर्थ तो होगा इसका सारा कलेवर बदलना इससे तो अच्छा यही होगा कि- इसकी अन्त्येष्टि करके संस्कारविधि के पहले संस्करण को ही छपा लिया जाए और पहला ही सत्यार्थप्रकाश ले लिया जाए। जो कुछ ऋषि ने त्याग दिया था उसको ही प्रामाणिक मान लिया जाये।

संस्कारविधि का द्वितीय संस्करण-

ऋषि दयानन्दजी का बनाया हुआ श्लोक वर्तमान संस्कारविधि में विद्यमान है जिसमें दूसरे संस्करण का काल बताया गया है। देखिये - ''बिन्दु वेदांक चन्द्रेब्दे शुचौ मासेऽसि दले। त्रयोदश्यां रवौवारे पुनः संस्करणं कृतम्।। इसका अर्थ यह है कि सं. १९४० विक्रमी के आषाढ़ मास में त्रयोदशी रविवार को दूसरा संस्करण किया।

ऋषि की मृत्यु- उसी सम्वत् के कार्तिक मास की अमावस्या दीपावली को ऋषि का देहावसान हुआ। ऋषि

की मृत्यु से चार मास पूर्व दूसरा संस्करण बन रहा था। आषाढ़ से दीपावली तक का समय बीच में स्पष्ट ही है। अब प्रेस कॉपी की कहानी सुनिये-

ऋषि दयानन्दजी के इस विषय में दो पत्र श्री मुंशी समर्थदानजी के नाम लिखे ऋषि के पत्र व्यवहार में विद्यमान हैं- (१) आश्विन वदी ८ सोमवार सं. १९४० वि. २४ सितम्बर सन् १८८३ को लिखा गया है और दूसरा आश्विन बदी १३ शनिवार २६ सितम्बर को लिखा है। पहले पत्र में लिखा है कि- ''आज संस्कारविधि के पू. १ से ४७ तक भेजते हैं।'' (२) इसी तिथि को लिखकर बताया है कि उस दिन ''संस्कारविधि के पृष्ठ १ से लेकर ४७ तक भेजे है, पहुंचे होंगे।'' इस पृष्ठ संख्या से अनुमान होता है कि 'पुंसवन संस्कार' तक की प्रेस कॉपी स्वामीजी ने स्वयं ही छपने के लिए भेज दी थी। इतने लेख में सामान्य प्रकरण में आया 'अयन्त इध्म' मंत्र प्रथम समिधा के लिए विद्यमान था चाहे वह हाशिये पर हो। और गर्भाधान में यह भी आ चुका था कि ''सामान्य प्रकरण के प्रमाणे हवन करके'' तथा पुंसवन संस्कार का यह निर्देश भी पृष्ठ ४७ तक आ चुका था कि- पृष्ठ अमुक में लिखे प्रमाणे 'अयन्त इध्म.'' इत्यादि। ऐसी स्थिति में यह लिखना कि यह पीछे से जोड़ा गया है बड़ी भारी जबर्दस्ती है।'' जो माननीय उपाध्यायजी जैसे प्रौढ़ तथा गम्भीर विद्वान् के द्वारा नहीं होनी चाहिए जिनसे मेरे जैसों को बहुत कुछ सीखना है।

श्री उपाध्यायजी की महाक्लिष्ट कल्पना-

यह लिखना कि सात बार 'अयन्त इध्म' मंत्र की प्रतीकें संस्कारविधि में पीछे से जोड़ी गई है यह कल्पना करके श्री उपाध्यायजी ने बहुत बड़े साहस का काम किया है। श्री उपाध्यायजी के विचारानुसार यदि कोई ऐसा व्यक्ति था कि जिसने ६-७ बार 'अयन्त इध्म' इस मन्त्र की प्रतीक जगह-जगह लिखने का कष्ट उठाया और 'समिधाग्नि.' आदि संकेतों पर लगभग उतनी ही बार हड़ताल फेरने का कष्ट किया वह अवश्य पागलखाने में रखने योग्य कोई होगा, क्योंकि उसको एक बहुत ही सुगम और बहुत ही छोटा-सा काम करना ही पर्याप्त था वह यह कि 'नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा' इस वाक्य को इस प्रकार कर देता कि ''नीचे लिखे एक मन्त्र से एक समिधा'' ऐसा करने में केवल २ के अंक को दो स्थानों से मिटाना, बस इतना काम था। इसको करके उसको एक जगह भी 'अयन्त इध्म आदि चार मन्त्रों से यह कुछ लिखने की आवश्यकता न होती और यदि प्रतीकें देना आवश्यक भी समझता तो भी उसको एक-एक के स्थान में 'एक' कर देना अत्यन्त आवश्यक था। जो इतना आवश्यक और सुगम काम नहीं कर सका उसने छः बार 'अयन्त इध्म' को प्रतीक लिखने और 'समिधाग्नि.' को मिटाने का कार्य किया होगा, ऐसी कल्पना कल्पनातीत ही है। पर श्री उपाध्यायजी प्रमाणभूत आचार्य है उनको अधिकार है वह चाहे जैसी कल्पना कर लें।

भोंड़ा वाक्य-

'ओं अयन्त' इस मन्त्र से एक। तथा 'ओं समिधाग्नि.' इससे एवं 'सुसमिद्धाय.' इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी ओर 'ओ तन्त्वा.' इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इन वाक्यों में 'भोंड़ा वाक्य' कौन-सा है? यह सारे पाठक पृथक्-पृथक् और आपस में मिलकर भी विचारें। मुझको तो इनमें कोई वाक्य भोंड़ा दिखाई नहीं दिया। मैं समझता हूँ कि 'अयन्त इध्म' मन्त्र पर सर्वथा अनावश्यक प्रश्न उठाया गया और उस पर मुझको भी इतना लिखना पड़ा। अब अच्छा यह है कि इन सब लेखों को हमारी ''सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को धर्मार्य सभा के सम्मुख रख दिया जाये और यह सभा जो निर्णय दे उसे हम सब श्री उपाध्यायजी सहित स्वीकार करें'' और समाज में नई-नई उलझनें न उत्पन्न करें। पूज्य उपाध्यायजी संस्कारविधि और सत्यार्थप्रकाश के संशोधन का कार्य

अब अपने हाथ में ले लें तो मैं उनका तुच्छ सेवक और उनका भक्त भी उनको अपनी योग्यता के अनुसार सहयोग दूंगा। मेरा विचार यह है कि - 'सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि में प्रक्षेप कुछ भी नहीं है पर कुछ अशुद्धियाँ हैं- ऐसी अशुद्धियाँ प्रायः मुद्रकों से हुआ ही करती है और प्रूफ देखने वालों की असावधानी या अयोग्यता से रह जाती हैं। ऐसी भूलें भी बहुत नहीं है यदि मिलकर कार्य करेंगे और ग्रंथों को शुद्ध कर सकेंगे तो आर्य जनता का महान् उपकार होगा। पर यह अचानक, अकारण और अनावश्यक उलझन जो श्री उपाध्यायजी ने खड़ी कर दी है, उसपर आप हट न करें। उसमें समाज को भारी हानि होगी, ''जिसे शास्त्रार्थ करनेवाले ही अनुभव कर सकते हैं।'' दूसरे बड़े-बड़े विद्वान् भी यह अनुभव नहीं कर सकते कि ऐसी उलझनों से और कितनी उलझनें खड़ी हो जायेंगी?

श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय -

'आर्य संसार' के वैशाख अङ्क में विद्वद्वर श्री पं. अमरसिंहजी आयपथिक ने मेरे एक आर्यमित्र के लेख 'एक पुरानी उलझन' की मीमांसा की है। श्री पं. जी की सद्भावना मुझे सदैव प्राप्त रही है और इस लेख में उन्होंने जो मेरे प्रति प्रशंसा के शब्द लिखे है, उनका मैं आभार मानता हूँ। श्री पं. जी का लेख विद्वतापूर्ण और असाधारण अध्ययन और परिश्रम का परिचायक है, परन्तु मुझे एक कमी प्रतीत होती है। मैंने 'असली कॉपी' प्रेस कॉपी को स्वयं अपनी आंख से देखा और मिलान किया। १८८४ के छपे पहले संस्करण और उसके पश्चात् छपे दो-तीन संस्करणों का मिलान किया। इसके अतिरिक्त परित्यक्त संस्करण भी मेरे पास है। श्री पं. जी ने इनको नहीं देखा। अतः प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में उन्होंने अनुमान आदि से काम लिया। यदि वे या अन्य बहुत से विद्वान् जिनकी ओर उन्होंने अपने लेख में संकेत किया है स्वयं देख लें तो उन्होंने जो पांच-छः प्रश्न मुझ पर किये हैं, उन सबका उत्तर वही कापियों दे देगी और श्री पं. जी की तर्क-पद्धति भी कुछ भिन्न ही होगी। प्रत्यक्ष अभाव में 'मुद्दई मुस्त और गवाह चुस्त' की कहावत लागू हो जाती है। मैं कोई 'नई उलझन' पैदा नहीं कर रहा हूँ। संस्कार विधि के पहले दो-तीन संस्करण छापने वालों के समक्ष भी यह उलझनें थीं। श्री स्वामीजी महाराज इस संसार में न थे। 'परोपकारिणी' की परिस्थिति भी चिन्ताजनक रही होगी। उस समय भूल सुधारना भी सुगम था।

परन्तु उस समय 'लोपा-पोती से' काम चलाया गया। इन ७६ वर्षों में भूमि को कठिनता बढ़ गई है, परन्तु उलझनें तो ज्यों की त्यों बनी हैं। पं. जी के लेख के अनेक भागों पर मुझे बहुत कुछ वक्तव्य है, परन्तु मैं यथाशक्ति केवल 'सार' को ही लेता हूँ जिससे विषयान्तर न हो जाय। श्री पं. जी का पक्ष यह है कि स्वामीजी महाराज 'ऋषि' थे, 'मन्त्र द्रष्टा' थे, अपने युग के 'कल्पकार' थे। अतः उन्होंने जो विशेष 'कल्प' बनाया वह अन्य आचार्यों से भिन्न होता हुआ भी माननीय है।'' इतना स्वीकार करने में मुझे आपत्ति नहीं। परन्तु जिसको आप विशेष 'कल्प' कहते हैं उसका स्वरूप 'कल्प' का है ही नहीं। यदि स्वामीजी को पुराने आचार्यों से भिन्न किसी विशेष निज 'कल्प' की इष्टि होती तो वह आरम्भ में अर्थात् 'असली कॉपी' में ही इसका द्योतन करते और अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते। अन्य स्थान से उद्धरण करने में असावधानी हो सकती है।

नये 'कल्प' बनाने में आरम्भ से सावधान रहना पड़ता है और संशोधन की आवश्यकता कम पड़ती है। ''हमारे सामने जो प्रचलित संस्कार विधि'' है और जिसका पं. जी ने सम्पोषण किया है उस पर दृष्टि डालने से विशेष 'कल्प' का स्वरूप दिखाई नहीं देता कैसे? देखिये, नये 'कल्प' का निर्देश निश्चित शब्दों में होना चाहिये, संदिग्ध न हो। न उनको कार्यान्वित करने वाले को कुछ काट-छांट करनी पड़े। श्री पं. जी यज्ञ करने या

कराने में बिना काट-छांट किये कार्य चला ही नहीं सकते वस्तुत: उनके समक्ष उलझनें हैं और दूसरों के समक्ष भी श्री पं. जी काट-छाँट करने पर बाधित होते हैं'' परन्तु कहते नहीं, सब से पहले यह पंक्ति आती है- 'तीन' लकड़ी आठ-आठ अंगुल की घृत में डुबा उनमें से एक-एक नीचे लिखे एक-एक मन्त्र से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ावे। इस प्रकार 'एक-एक' वाला वाक्य तीन स्थानों पर आया।

इस निर्देश का आप कैसे पालन करते हैं ? एक-एक मन्त्र से।'' कितना स्पष्ट निर्देश है, 'आपके मतानुसार इस इस विधि की, जो कि ''मन्त्र द्रष्टा'' ''ऋषि'' और ''कल्पकार'' द्वारा दी हुई है आपने अवहेलना की, क्योंकि बिना अवहेलना किये आपके पक्ष की सिद्धि न होगी। आप दोनों मन्त्रों से एक आहुति देने को इस विधि का अपवाद मानते हैं। यह तो विचित्रतम स्थिति है। विधि कहीं न हो और अपवाद हो जाय। पाणिनि में विधि और अपवाद के अनेक स्थल मिलेंगे। परन्तु ऐसा एक भी नहीं। यह काटने-छांटने की पहली क्रिया हुई जो आपके पक्ष में आवश्यक है। आगे चलिये- ''सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्र जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा।। इदमग्नये जातवेद से इदन्नमम।''

यहां 'स्वाहा' और 'त्याग' दोनों है। जाप में तो ऐसा नहीं होता। यहां भी अवश्य ही आप काट-छाँट करते होंगे। सांख्यायन का प्रमाण यहां समानान्तर तो नहीं रहा। यदि ऋषि को ऐसा अभीष्ट होता तो 'जप' का आदेश देते और 'स्वाहा' तथा 'इदन्नमम' न लिखते न 'इन मन्त्रों से' ऐसा लिखते। ''आपको बिना काटे-छाँटे तो एक पग भी गति नहीं है।'' काटने छांटने से आप वह स्वीकार कर लेते हैं कि 'भूल है' उसका सुधार होना चाहिए। क्यों ऐसा करने से 'ऋषित्व' और 'मन्त्रद्रष्टृत्व' की अवहेलना होती है या नहीं? या यह आक्षेप केवल दूसरों के लिये है। जब संशोधन करना है तो सीधा-सीधा मान लीजिये कि असली कॉपी ठीक थी। प्रेस कॉपी में किसी ने भूल की, संशोधन नहीं। यह विकृत रूप हो गया और विकृति इतनी भद्दी तरह से की गई कि भूल पकड़ में आ गई। यदि आजकल की प्रचलित संस्कार विधि को आप बिना काटे-छांटे तद्वत् पालन कर सकते तो चाहे विधि पुरानी होती या नई, प्राचीन ऋषियों की होती या स्वामी दयानन्द का नया कल्प, यज्ञ करने कराने वालों के समक्ष उलझन तो न होती। इस समय वो दो ही विकल्प हैं, या काट-छांट कीजिये और जो आक्षेप आप मेरे पक्ष पर करते हैं। उसको अपने ऊपर ओढ़िये या चुपचाप बैठ जाइये और कहिये कि यह 'कल्प' अव्यवहार्य है। बात तो केवल इतनी ही है। यही संगठन की बात! आप मेरी मनोवृत्ति पर विचार करें। जब मुझे प्रत्यक्ष प्रमाण से ज्ञात हो गया कि महर्षि जी को यह इष्ट था तो मैं दूसरों के कहने से चाहे वह दो-चार हो या दस-बीस, व्यक्ति हों या सभा, केवल संगठन के लिये सत्यमार्ग को को छोड़ दूँ? संगठन और उसके प्रस्ताव तो बदलते रहते हैं और बदल सकते हैं। मैं यह नहीं कहता कि आप मेरी आँखों से देखें, परन्तु इतनी मांग तो अन्यायपूर्ण न होगी कि जब तक आप अपनी आँखों से न देख लें मुझे अपनी आंखों से देखे हुए के विरुद्ध प्रेरणा न करें।

श्री पण्डित ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केशरी-

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् श्री पं. गंगाप्रसादजी उपाध्याय के 'अयन्त इध्म आत्मा' मन्त्र सम्बन्धी लेख पर मीमांसा की थी जो कि 'आर्य संसार' मासिक कलकत्ता में छपी है। मैंने उसमें वर्तमान संस्कार विधि की पुष्टि की है और ऋषि दयानन्द जी को एक कल्पकार माना है। माननीय उपाध्यायजी ने मेरी इस मान्यता पर अपने एक लेख में दो आपत्तियां उठाई है। आदरणीय उपाध्यायजी ने वह आपत्तियां उठाकर मुझको अपनी मान्यता स्पष्ट करने का शुभ अवसर प्रदान किया है। इसके लिये मैं श्री उपाध्यायजी का धन्यवाद करता और आभार मानता हूँ।

मेरी कामना है कि श्री उपाध्यायजी सौ वर्ष से भी अधिक जियें और अपनी लेखनी से आर्यसमाज को सदा लाभ पहुंचाते रहें। बड़े मतभेदों को प्रकट कर देने से बहुतों को कुछ पढ़ने और विचार करने का अवसर मिल जाता है। मेरी मान्यता यह है कि ऋषि दयानन्दजी एक कल्पकार ऋषि थे और 'संस्कार-विधि' उनका बनाया हुआ एक अत्युत्तमात्र गृह्य-सूत्र है।'' श्री उपाध्यायजी ने मेरी इस मान्यता पर जो कुछ लिखा है। उसको उन्हीं के शब्दों में उनके नाम के साथ रखकर मैं अपना विचार अपने नाम से व्यक्त करूंगा-

श्री उपाध्यायजी- जिसको आप विशेष कल्प कहते हैं उसका स्वरूप कल्प का है ही नहीं। यदि स्वामी जी को पुराने आचार्यों से भिन्न किसी विशेष निज कल्प की इष्टि होती तो वह आरम्भ में अर्थात् 'असली कॉपी' में ही उसका द्योतन करते और अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते।

मैं (अमर सिंह आर्य पथिक)- इस सन्दर्भ के तीन भाग हैं- (१) उस (संस्कार विधि) का स्वरूप कल्प का है ही नहीं। श्री उपाध्यायजी ने कल्प का स्वरूप बताया होता तो संस्कार विधि के स्वरूप से उसका मिलान करके देखा जाता। (२) स्वामीजी को अन्य आचार्यों से भिन्न निज कल्प इष्ट होता तो वह आरम्भ में ही उसका द्योतन करते- किसी आचार्य ने भी ऐसा द्योतन नहीं किया है कि मैं अन्यों से भिन्न निज कल्प बनाता हूं। पर बनाये सब ने अन्यों से कुछ-कुछ भिन्न ही हैं। यदि भिन्नता न करनी होती तो दूसरे कल्प बनाये ही क्यों जाते। (३) अन्य सूत्रों के अनुसरण मात्र से सन्तुष्ट न होते?

क्रमशः

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

वैचारिक क्रान्ति के लिये सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

संस्था समाचार

यज्ञोपरान्त प्रवचन के क्रम में आचार्य कर्मवीर ने चारों वर्णों के विषय में बताया। हम समाज में देखते हैं कि सब मनुष्यों की रुचि अलग-अलग है। किसी को खेलने में रुचि है। किसी को पढ़ाई में है। कोई सरकारी सेवा में जाना चाहता है। कोई वैज्ञानिक बनना चाहता। कोई इंजीनियर बनना चाहता है। कोई अध्यापक बनना चाहते हैं कोई व्यापार करना चाहते हैं आदि अनेक रुचियां हैं। इन्हीं रुचियों के आधार पर वेद में चार वर्णों का विभाग बताया गया है, ब्राह्मण जो कि पढ़न-पढ़ाने का, ज्ञान देने का मुख्य रूप से कार्य करते हैं। नए-नए अविष्कार करने वाला हो तथा सत्य को सत्य कहने और असत्य को असत्य बोलने में सदा तत्पर रहे। क्षत्रिय जो की रक्षा का कार्य करते हैं, समाज में अन्याय ,अत्याचार को रोकते हैं। क्षत्रिय का शरीर ऐसा बलिष्ठ हो कि शत्रु देखकर भयभीत हो जाए। वैश्य जो व्यापार आदि करते हैं तथा समाज के हित के लिए विद्यालय, चिकित्सालय, आदि बनवाते हैं। शूद्र जो इन तीनों वर्णों का सहयोग करते हैं। जहां यह चारों वर्ण मिलकर कार्य करते हैं वहां समाज का सदा ही कल्याण होता है।

आचार्य विद्यानन्द ने प्रार्थना के विषय में बताया कि सर्वप्रथम हम ईश्वर पर विश्वास करें। उनके सच्चे स्वरूप को समझें। ईश्वर चेतन है तभी वह हमारी बातों को सुन सकता है। पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त श्रेष्ठ कर्मों की सिद्धि के लिए प्रार्थना करें। तब वह प्रार्थना अवश्य ही सफल होती। प्रार्थना और भीख मांगने में अंतर है। भीख मांगने वाला पुरुषार्थ नहीं करना चाहता जबकि प्रार्थना में कहा गया कि पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त ईश्वर व किसी समर्थवान् व्यक्ति से सहयोग मांगना यह प्रार्थना है। हमें प्रार्थना केवल संसार के सुख साधन प्राप्त करने के लिए ही नहीं बल्कि ईश्वर से शान्ति, सुख, आनन्द की प्राप्ति के लिए करनी चाहिए। अर्थात् ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करनी चाहिए। दूसरों को हानि पहुंचने के लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए कि हमारे पड़ोसी का घाटा हो जाए आदि। प्रार्थना करने के लिए श्रेष्ठ बुद्धि की आवश्यकता है। इसलिए इस मन्त्र में कहा गया है कि जिस मेधा बुद्धि की उपासना ज्ञानी, विद्वान लोग करते हैं उसी मेधा बुद्धि से युक्त आप मुझे आज ही कीजिए।

आचार्य शक्तिनन्दन ने अपनी यात्रा का अनुभव बताते हुए कहा कि दिल्ली में एक टेम्पो वाला जो कि ब्राह्मण है। उसके टेम्पो में शिव की मूर्ति, स्टीकर आदि लगा हुआ है। लेकिन वह अजमेर दरगाह में चादर चढ़ाना चाहता है, क्योंकि उसके दादा-पिता आदि ऐसा करते आ रहे हैं। जब उन्होंने कारण पूछा कि क्या आपके शिव में इतना सामर्थ नहीं है कि वह आपकी मन्नत पूरा कर सके तो वह निरुत्तर हो गया है। धर्म के विषय में मन में ऐसा डर बैठा दिया जाता है कि अगर ऐसा नहीं करोगे तो कोई अनिष्ट हो सकता है। इस डर से लोग इस तरह के पाखण्ड को करते रहते हैं। आज हमें समाज में जाकर धर्म के विषय में लोगों को जागरूक करने की आवश्यकता है। हम जिन कार्यों को उचित समझते हुए भी नहीं करते हैं। उसके पीछे हमारा पूर्व जन्म के राग द्वेष के संस्कार हैं और वर्तमान के पुरुषार्थ की कमी है। हम अपनी बुद्धि धन कमाने में लगाते हैं पर धर्म को जानने के लिए बुद्धि नहीं लगाते। उसके लिए समय का अभाव बताते हैं।

श्रावणी पर्व के अवसर पर भजन के क्रम में पण्डित लेखराज जी -'धर्म वैदिक आर्य है नाम', पण्डित भूपेन्द्र जी- 'वेद स्वाध्याय सत्संग करते रहो एक दिन प्राप्त सद्ज्ञान हो जाएगा', श्रीमती सुशीला जी- 'श्रावणी का त्यौहार है कुदरत का उपहार है चाहूं ओर हरियाली छाई आ रही मस्त बहार है।', श्रीकृष्ण गोपाल जी- 'हरि की भक्ति कर ले मनवा सांची कहूं खरी खरी', ब्र. भानु प्रताप- 'ओं सुखकन्द से सच्चिदानन्द से याचना है श्रेय पथ पर चलूं कामना है।', श्री ऋषि देव- 'वक्त है कम लंबी मंजिल तुम्हें तेज कदम चलना होगा।', श्री शान्ति देव- 'हाथों में तिरंगा प्यारा तेरी गोद का मुझको सहारा।',

श्री वासुदेव- 'रक्षाबंधन आज बांधने बहन द्वार तेरे आई रे।'

ब्र. अशोक ने संस्कृत दिवस के अवसर पर कहा कि हमारे सभी वैदिक ग्रंथ संस्कृत में है। हमें संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और संस्कृत को बढ़ावा देना चाहिए।

श्री वासुदेव ने हैदराबाद स्वतन्त्रता संग्राम के विषय में बताया कि उस समय निजाम का अत्याचार बहुत ही बढ़ चुका था। इसलिए हैदराबाद सत्याग्रह किया गया। उसमें १९ आर्यसमाजी शहीद हुए। उनकी याद में हम इस दिवस को मानते हैं। कार्यक्रम का संचालन भी श्रीमान् वासुदेव जी के द्वारा किया गया। अन्त में प्रीति भोज का आयोजन हुआ।

श्रावणी उपाकर्म- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल के नवीन ब्रह्मचारी- ब्र. वेदव्रत , ब्र. कर्मनिष्ठ , ब्र. सत्यवीर, ब्र. मोहित, ब्र. संतोष , ब्र मयंक . ब्र. रामेश्वर इन सात ब्रह्मचारियों का उपनयन व वेदारम्भ संस्कार आचार्य कर्मवीर जी के द्वारा किया गया। पुरोहित का कार्य ब्रह्मचारी आकाश ने किया। पिता के रूप में श्रीमान् वासुदेव ने उपदेश दिया। आश्रमवासी तथा अन्य अतिथि महानुभावों ने इन्हें आशीर्वाद प्रदान किया।

अतिथि होता- जयपुर निवासी श्री सौरभ की पुत्री निकिता का जन्मदिवस ऋषि उद्यान में प्रातःयज्ञ कर और जन्म दिवस की आहुति देकर मनाया गया। आचार्य विद्यानन्द जी आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

परोपकारी सभा में लम्बे कल से सहयोग करने वाले श्री देव मुनि का जन्मदिवस ऋषि उद्यान में यज्ञ कर और जन्मदिवस की आहुति देकर मनाया गया। आपने आश्रमवासियों के लिए दोपहर को विशेष भोजन की व्यवस्था भी की।

प्रातः काल यज्ञोपरान्त प्रवचन के क्रम में आचार्य कर्मवीर जी ने उपनिषद् के विषय में बताया कि आर्य समाज में ११ उपनिषद् मान्य हैं। वैसे उपनिषदों की संख्या बहुत ज्यादा है। उपनिषद् का अर्थ है समीप बैठना। जिसके समीप बैठने से दुःख की निवृत्ति होती है और सुख की प्राप्ति होती है। अंग्रेज, मुसलमान आदि भी इसे पढ़कर बहुत प्रभावित हुए। ईशोपनिषद् में कहा कि यह सारा संसार ईश्वर से ढका हुआ है। अर्थात् ईश्वर सर्वत्र व्यापक है किसी के धन का लोभ मत करो। लोभ सभी पापों का मूल है। आसन लगाकर आंख बंद कर परमात्मा का चिंतन करना चाहिए। बिना आंख बंद किए ईश्वर का ध्यान नहीं हो सकता। भौतिक साधनों का प्रयोग करते हुए जब तृप्त हो जाते हैं तब हम आध्यात्मिक की ओर बढ़ते हैं। उपनिषद अध्यात्मिक विषय को बताता है।

आचार्य शक्तिनन्दन जी ने अथर्ववेद के मन्त्रों के आधार पर इन्द्र शब्द के व्याख्या की और बताया कि जो प्रथम है, मननशील है, जिसके भय से सूर्य और पृथ्वी अपना कार्य करते हैं, जो सभी को कार्य देता है, जो चलायमान पर्वत को रोक कर रखता है, वरणीय है, मेघ को तोड़कर समुद्र के रूप में बहाया है, विश्व को व्यवस्थित किया है सभी को बुद्धि दी है ऐसे इंद्र के प्रति श्रद्धा का भाव रखना चाहिए।

संस्कार विधि संवाद में पधारे गोष्ठी के सदस्य डॉ ज्वलन्त कुमार जी शास्त्री ने विष्णु के बारे में बताया कि पौराणिक लोग विष्णु किसे कहते हैं और आर्य समाज विष्णु किसे कहता है?। जो सर्वत्र व्यापक है। कई पौराणिक विद्वान् स्वामी दयानन्द जी से प्रेरणा लेकर के आर्य समाज के विचारधारा से बहुत प्रभावित हुए उन्होंने भी विष्णु को अवतार नहीं माना। विद्वान् लोग विष्णु के परम पद को प्राप्त होते हैं। आज आर्य समाज में प्रचारक धर्म की कमी आ गई है।

परोपकारिणी सभा के संरक्षक व संस्कार विधि संवाद गोष्ठी के सदस्य डॉ सुरेन्द्र कुमार जी ने बताया कि हमारे देश का प्राचीन नाम आर्यावर्त और भारत ही था। लेकिन यह भारत नाम दुष्यन्त शकुन्तला पुत्र भरत के नाम से नहीं है। अथवा भा + रत ज्ञान में रत रहने वाला देश है। ऐसा अर्थ करते हैं । यह भी उचित नहीं है। पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिमी समुद्र तक तथा हिमालय से लेकर विन्ध्य पर्वत तक का जो क्षेत्र था वह आर्यों का निवास स्थान था उसे आर्यावर्त कहा गया। स्वयाम्भू मनु के वंश में

उनके पुत्र प्रियव्रत और प्रियव्रत के वंश में एक राजा ऋषभ हुए और उस ऋषभ के राजा का पुत्र भरत जो की बहुत प्रतापी राजा हुआ। उसके नाम से इस देश का नाम भारत हुआ।

संस्कार विधि संवाद गोष्ठी में आए हुए हैदराबाद गुरुकुल निगम निडम के आचार्य उदयन जी ने बताया कि तत्चक्षुर्देवहितम् मन्त्र में जो कहा गया है कि हम १०० वर्ष तक देखें। १०० वर्ष तक जिए। १०० वर्ष तक सुने। आदि सामान्य अर्थ नहीं कहा गया है। यदि ऐसा अर्थ करते हैं तो हमारा जीवन भोगों की ओर अग्रसर होगा। सामान्य रूप से कोई भी वस्तु होती है तो उसकी एक आयु होती है। वैसे इस शरीर की आयु है। उसके लिए प्रार्थना करना व्यर्थ होगा। वास्तविक अर्थ है कि हम १०० वर्ष तक वेद को देखें ,ईश्वर की वेदवाणी को सुने , वेद का प्रवचन करें। पहले इसमें देखने की बात कही है बाद में जीने की बात कही है। इसका अर्थ यह समझा जाता है कि जिस व्यक्ति ने वेद शास्त्र और योग रूपी चक्षु को प्राप्त कर लिया है। उसे ही जीने का अधिकार है।

ब्र. इन्द्र ने ज्योतिष के विषय में बताया कि वेद के जो अंग है जो कि वेद को जानाने में सहयोगी है। उनमें ज्योतिष भी है। ज्योतिष को चक्षु कहा है कहा जाता है कि वेद यज्ञ के लिए प्रवृत्त है और यज्ञ काल के अनुसार किया जाता है। उस काल को बताने वाला ग्रन्थ ज्योतिष है। जो हम संकल्प पाठ पढ़ाते हैं उसमें जो वर्तमान सृष्टि चल रही है। जो की चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष की है उसे ब्रह्म का दिन कहा जाता है और इतना ही काल प्रलय का है। देवों का एक दिन मनुष्यों के ३६५ दिन के बराबर होता है। आप इसे पृथ्वी के दक्षिणी तथा उत्तरी ध्रुव पर देख सकते हैं वहां ६ महीने का दिन और ६ महीने की रात्रि होती है। फिर इसकी कालगणना करके सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलयुग इनको मिलाकर एक चतुर्युग और ७१ चतुर्युग का एक मन्वन्तर और इस तरह १४ मन्वन्तर होते हैं। सातवां मन्वन्तर चल रहा है और कलयुग का एक ही चरण होता है वह अभी चल रहा है अभी २८वां कलयुग चल रहा है अर्थात २८ सतयुग द्वापर और त्रेता बीत चुके हैं। इस प्रकार वर्तमान में एक अरब छियानवे करोड़ आठ लाख तिरेपन हजार एक सौ चौबीसवां वर्ष चल रहा है।

भजन के क्रम में पंडित भूपेन्द्र- 'प्रभु को भूलकर इंसान ग़ाफ़िल होता जाता है' तथा 'सारा संसार जिसका रचाया हुआ। जग के कण -कण में है वो समाया हुआ।' पंडित लेखराज- 'सारी सृष्टि दुल्हन सी सजी है क्या अनोखी ये कारीगरी है।'

अतिथि होता- जोधपुर निवासिनी श्रीमती विजयलक्ष्मी जी अपनी पुत्री के साथ ऋषि उद्यान आकर अपने पुत्र हिमांशु जी का प्रातः काल यज्ञ कर व जन्मदिवस की आहूति देकर जन्मदिन मनाया। आश्रमवासियों व गुरुकुलवासियों के लिए उन्होंने मिठाई की व्यवस्था की।

परोपकारी सभा के कर्मचारी श्री चोखाराम ने अपनी पुत्री रचना का जन्मदिवस यज्ञ करके मनाया।

सवाईसिंह के पुत्र श्री जगदीश व श्रीमती योग्यता के सुपुत्र श्री ऋतिक का जन्मदिवस सपरिवार सायं यज्ञ कर व जन्मदिन की आहुति देखकर मनाया गया। आचार्य कर्मवीर आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

सभा कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल की प्रेरणा से अपना घर अजमेर के अध्यक्ष श्री सतीश राठी अपने इष्ट मित्रों के साथ ऋषि उद्यान आकर यज्ञ व जन्मदिवस की आहुति देकर अपना जन्म दिवस मनाया। सभी आश्रमवासियों व गुरुकुलवासियों के लिए प्रातःराश की व्यवस्था की तथा अतिथि होता के रूप में आर्थिक सहयोग भी प्रदान किया। आचार्य कर्मवीर आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

अजमेर निवासी श्री दीपक आर्यवीर- फोटोग्राफर की माता निर्मला शर्मा सपरिवार ऋषि उद्यान आकर प्रातःकाल यज्ञ कर व जन्म दिवस की आहूति देकर अपना जन्मदिवस मनाया। सभी आश्रमवासी व गुरुकुलवासियों के लिए मिठाई व अतिथि होता के रूप

में आर्थिक सहयोग प्रदान किया। आचार्य कर्मवीर आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

ऋषि उद्यान में विद्वान् अतिथियों का आवागमन होता रहता है। इसी क्रम में शिवालिक गुरुकुल के आचार्य श्री कृष्ण देव व आचार्य दिलीप अपने कुछ छात्रों के साथ शैक्षणिक भ्रमण के लिए ऋषि उद्यान आए। आचार्य दिलीप जी गुरुकुल ऋषि उद्यान के स्नातक हैं।

महर्षि के २००वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर बहुत सारे कार्यक्रम बहुत सारी संस्थाओं, व्यक्तियों द्वारा किया जा रहा है? इस अवसर हमें प्रसन्न होना चाहिए या दु:खी होना चाहिए। आर्य समाज निन्दा करता है? कुछ लोग कहते हैं कि हमें प्रशंसा ही करनी चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए। लेकिन महर्षि ने कहा है किसी के गुण को गुण के रूप में कहना प्रशंसा और गुण को दोष के रूप में कहना निन्दा है। ऐसे ही किसी के दोष को दोष के रूप में कहना प्रशंसा और गुण के रूप में कहना निन्दा है। आर्य समाजी भी आपस में एक दूसरे की आलोचना करते हैं उसमें हमें ध्यान रखना होता है कि जो बातें सत्य हैं उसके पक्ष में हम बोले। असत्य का ही खंडन करें। जो दोष उसमें नहीं है, उसे दोष के रूप में प्रस्तुत न करें। चुप रहना, कुछ ना बोलना यह आदर्श, आध्यात्मिक स्थिति नहीं है। दोषों के बताने के कारण आर्य समाज की अच्छी स्थिति है।

दिल्ली से पधारे स्वामी दयानन्द विदेह ने बताया कि संध्या के मन्त्रों पर गंभीरता से विचार करें। तोते की तरह मन्त्रों को बोलना ठीक नहीं। बच्चों को भले ही रटवा दें। राग, द्वेष, काम, क्रोध अहंकार, लोभ के रूप में यह मन भटकता रहता है। सदा चिंतन करते रहे कि मैं द्वेष क्यों कर रहा हूँ। आधा पेट परम योगी, पौन पेट योगी, पूरा भरा पेट भोगी। चटपटा और अधिक भोजन हमें नहीं करना चाहिए।

हरिद्वार से पधारे मुख्य केंद्रीय प्रभारी स्वामी परमार्थ देव का आगमन अजमेर ऋषि उद्यान में हुआ। आपने यहाँ एक दिवसीय योग शिविर लगाया। आपने बताया कि कैसे आप का जीवन सत्यार्थ प्रकाश पढ़कर बदल चुका है और अपने जीवन को देश समाज के कल्याण और साधना के लिए समर्पित कर चुके हैं। आप २००८ में हरिद्वार में स्वामी रामदेव से मिले और उनके साथ मिलकर अपने जीवन का निर्माण और समाज के कार्य के लिए तत्पर हुए। आपने बताया कि शरीर का निधन तो होना ही है, हम कुछ करके जाएं। साधना के पथ पर कठिनाई तो आती ही है। समाज में अपमान भी होता है सम्मान भी मिलता है। आपके मन में एक बार भी सांसारिक सुख की कामना नहीं हुई, अगर कभी हुई भी तो उसका आपने आदर नहीं किया। आपने एक दो भजन भी गाए-- कण-कण में जो रमा है हर दिल में है समाया-- साधना की राह पर चलना कठिन रोकेंगे साधक तुझे लाखों विघ्न। आप ने ऋषि उद्यान पधार कर आपने आप को गौरवान्वित महसूस किया।

अतिथि होता - अजमेर निवासी श्री बद्री प्रसाद पंचोली की पत्नी स्वर्गीय श्रीमती कमला पंचोली की स्मृति में सभी परिवार के लोग सांय काल ऋषि उद्यान में यज्ञ किया।

हरियाणा निवासी सपत्नीक गौतम उपस्थित हुए प्रात: काल यज्ञ करके व जन्मदिन की आहूति देकर अपना जन्म दिवस मनाया। अतिथि होता के रूप में सहयोग राशि प्रदान की। आचार्य कर्मवीर आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

अजमेर निवासी की नवीन मिश्र की पुत्रवधू चित्रा मिश्र जी अपने पति गौरव मिश्र व परिवार के साथ सांयकाल यज्ञ व जन्मदिवस की आहुति देकर अपना जन्म दिवस मनाया। आचार्य कर्मवीर आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

परोपकारिणी सभा के कोषाध्यक्ष श्री सुभाष नवाल के छोटे भाई श्री दिनेश नवाल की श्रीमती राजकुमारी नवाल का जन्म दिवस प्रात: यज्ञ व जन्मदिवस की आहुति देकर मनाया गया है। आचार्य कर्मवीर आदि ने आशीर्वाद प्रदान किया।

आचार्य डॉ. धर्मवीर जी की सातवीं पुण्यतिथि मनाई

श्रीमती परोपकारी सभा अजमेर के द्वारा सभा के पूर्व प्रधान, वेदादि शास्त्रों के मर्मज्ञ महर्षि दयानन्द सरस्वती को सर्वात्मा समर्पित आचार्य डॉ. धर्मवीर जी की सातवीं पुण्यतिथि मनाई गई। ६.१०.२०२३ को सायं ५ बजे यज्ञ प्रारम्भ हुआ, यज्ञ के मुख्य यज्ञमती श्रीमती ज्योत्स्ना धर्मवीर थी। साथ ही सभा के अन्य सदस्यगण श्री ओम् मुनि, श्री वेदप्रकाश विद्यार्थी, मुनि सत्यजित् तथा अन्य लोग श्रीमती गीता तिवारी, श्री अनिल गुप्ता, श्री देवमुनि व श्री मुमुक्षु मुनि थे। यज्ञ ब्र. आकाश ने कराया। यज्ञ के पश्चात् श्रद्धाञ्जलि के रूप में डॉ.धर्मवीर जी के लिए एक स्वनिर्मित भजन- धर्म ध्वजा फहरा करके वो धर्मवीर जी चले गए। पं. भूपेन्द्र जी व पं. लेखराज जी ने गाया।

अजमेर निवासी आचार्य गोविन्द ने बताया कि वह ब्रह्मचर्यकाल से ही उन्हें जानते थे। उनकी चोटी लम्बी थी। इसलिए वे गुरुकुल में धर्मवीर चोटी के नाम से जाने जाते थे। १९७९ में जब अजमेर आए तब अजमेर में आपको डॉ. धर्मवीर जी के सिवा कोई नहीं जानता था। सभा हित में जो कुछ कोई सुझाव देता था, वे उसे सहर्ष स्वीकार कर लेते थे। आज जो सभा की साज-सज्जा और निर्माण हुआ है, वह उन्हीं के कारण है। श्री अंकित प्रभाकर ने बताया कि डॉ. धर्मवीर जी सीधी बात करने वाले थे। व्यवहार में विनम्र और सिद्धान्तों में कठोर थे । वे कभी छोटी बात पर नहीं लड़े। उनका विचार था कि विवाह न करना राष्ट्र के लिए घातक है। वे ऋषि दयानन्द की शैली पर चलने वाले व्यक्ति थे। वे किसी काम को मेरा मान कर करते थे।

भूतपूर्व मन्त्री श्री ओम् मुनि जी ने बताया कि शारदा परिवार ने पाकिस्तान से आए शरणार्थियों के लिए गोल मार्केट बनाया था। वह ५० साल की लीज पर था। वह पूरा हो चुका था। इस पर धर्मवीर जी कहते थे यदि यह काम नहीं हुआ तो लोग मुझे भी गालियाँ देंगे और तुझे भी। श्री सज्जन सिंह कोठारी, डॉ. धर्मवीर, श्री ओम मुनि आदि के सहयोग से ५० साल के लिए पुन: लीज मिल गई।

कार्यक्रम के मुख्य वक्ता सभा सदस्य डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी ने जिनका विषय था- "महर्षि दयानन्द के राष्ट्रवाद का सामाजिक और वैश्विक परिप्रेक्ष्य" इस पर अपना व्याख्यान किया। व्याख्यान से पूर्व आपने भी डॉ. धर्मवीर जी के विषय में बताया कि आपका उनका मिलना १९८६ में ऋषि उद्यान में हुआ। श्रावणी के अवसर पर संस्कृत में आपने उनके व्याख्यान सुने। वे एक विद्वान् या एक मूर्ख को भी उचित कार्य में लगा देते थे। जब वे सभा के सदस्य बने, उस समय परोपकारी पत्रिका की संख्या लगभग ५०० थी और उनके अन्तकाल तक १५००० से अधिक हो गई। उनके संपादकीय बहुत ही विशेष हैं। जो अवश्य ही पठनीय हैं और बहुत ही कम मूल्य पर उपलब्ध हैं। आपने बताया कि स्वामी दयानन्द जी दो प्रकार के राष्ट्रवाद को मानते हैं। अपने देश की प्रशंसा तो करते हैं, पर विश्व के मानवों से उनका वैर नहीं है। विश्व के सभी लोगों को परमात्मा की संतान समझते थे। इसी देश में वेद अवतरित हुए, अधिकांश ऋषियों का जन्म इसी देश में हुआ। इस कारण इस देश को मानते हैं। यह देश पारस पत्थर था, जिसे छूते ही दरिद्र विदेशी धनवान बन गए। दयानन्द विश्वभर के लिए थे। विदेशी हमारे ऊपर शासन ना करें, यह भी चाहते थे। हम कभी पददलित अवस्था में न हों। भारत से कुछ छात्रों को जर्मन भेजने का विचार था। आज उनकी सामाजिक बातों को बहुत सारे लोग मान रहे हैं। वे हिन्दू धर्म के टुकड़ों को जोड़ना चाहते थे। आदि अनेक बातें बताईं।

अन्त में सभा मन्त्री मुनि सत्यजित् ने डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी तथा श्रोताओं को धन्यवाद दिया, अन्त में सामूहिक वैदिक संध्या हुई। प्रीतिभोज के साथ यह कार्यक्रम संपन्न हुआ। कार्यक्रम का संचालन आचार्य शक्तिनन्दन के द्वारा किया गया। इस कार्यक्रम को परोपकारी सभा के यूट्यूब चैनल पर देख सकते हैं।

।। ओ३म् ।।

परोपकारिणी सभा, अजमेर के तत्त्वावधान में
१४० वाँ ऋषि बलिदान समारोह

कार्तिक शुक्ल चतुर्थी से षष्ठी, संवत् २०८० तदनुसार

दिनांक १७, १८, १९ नवम्बर २०२३, शुक्र, शनि, रविवार

विराट् व्यक्तित्त्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण के प्रति कृतज्ञता को प्रकट करने का स्वर्णिम-अवसर ऋषि के १४०वें बलिदान वर्ष के उपलक्ष्य में हमको पुनः प्राप्त हुआ है। इस अवसर पर परोपकारिणी सभा भव्य समारोह का आयोजन करने जा रही है। मुख्य कार्यक्रमों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है :-

अथर्ववेद पारायण यज्ञ- 'अथर्ववेद पारायण यज्ञ' का आरम्भ मंगलवार १४ नवम्बर से होगा व इसकी पूर्णाहुति बलिदान समारोह के अन्तिम दिन १९ नवम्बर को प्रातः १० बजे होगी। यज्ञ के ब्रह्मा आर्यजगत् के प्रतिष्ठित विद्वान् होंगे।

ध्वजारोहण व उद्घाटन- बलिदान समारोह का विधिवत् उद्घाटन ओ३म् ध्वजा के आरोहण व प्रधान जी के उद्बोधन के साथ किया जायेगा।

उपदेश-प्रवचन-भजन- प्रातः यज्ञ के बाद आध्यात्मिक प्रवचन होंगे। पूर्वाह्न, अपराह्न व रात्रि में आयोजित विभिन्न प्रासंगिक विषयों वाले सत्रों में आर्यजगत् के विशिष्ट संन्यासियों, विद्वानों, आचार्यों के विचार सुनने को मिलेंगे। साथ ही भजनोपदेशकों के मधुर भजनों का आनन्द भी प्राप्त होगा।

वेदगोष्ठी - प्रतिवर्ष की परम्परा के अनुसार इस वर्ष भी वेदगोष्ठी साथ में होगी। परोपकारिणी सभा के पूर्वप्रधान स्व. श्री गजानन्द आर्य की स्मृति में परोपकारिणी सभा, अजमेर व महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर एवं अन्तर्राष्ट्रीय दयानन्द वेदपीठ, दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में वेदगोष्ठी का आयोजन किया जायेगा। इस गोष्ठी में देश के विविध विद्वान् अपने शोधपूर्ण मौलिक विचार प्रस्तुत करेंगे। इस वर्ष वेदगोष्ठी का विचारणीय बिन्दु है- **महर्षि दयानन्द का समाजिक चिन्तन व वेद**। जो विद्वान् गोष्ठी में शोधपत्र प्रेषित करना चाहते हैं, वे ३१ अक्टूबर तक सभा के पते पर प्रेषित करवा देवें। १७, १८, १९ नवम्बर को ऋषि बलिदान समारोह के कार्यक्रमों के साथ-साथ वेदगोष्ठी भी चलती रहेगी। ऋषि-भक्त इसे सुनने का लाभ उठा सकते हैं।

वानप्रस्थ एवं संन्यास दीक्षा- इस अवसर पर शुक्र-शनि दिनाङ्क १७ व १८ को दिन में क्रमशः वानप्रस्थ व संन्यास संस्कार भी कराया जायेगा। वानप्रस्थ व संन्यास दीक्षा लेने के इच्छुक व्यक्ति ३१ अक्टूबर तक अपना परिचय आदि जीवनवृत्त परोपकारिणी सभा को भिजवा देवें। उन पर विचार के बाद इसके योग्य व्यक्तियों को वानप्रस्थ या संन्यास दीक्षा देने का निश्चय किया जायेगा।

चतुर्वेद कण्ठस्थीकरण प्रतियोगिता- प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली इस प्रतियोगिता में २१ वर्ष तक के छात्र भाग ले सकते हैं। किसी भी एक वेद को आद्योपान्त स्मरण करके इस प्रतियोगिता में भाग लिया जा सकता है। जो छात्र जिस वेद पर गत वर्षों में पारितोषिक ग्रहण कर चुके हैं, वे उस वेद से अतिरिक्त वेद स्मरण करके भाग ले सकते हैं। १८ नवम्बर को परीक्षा एवं १९ नवम्बर को पुरस्कार-वितरण का कार्यक्रम होगा। जो छात्र इस प्रतियोगिता में भाग लेना चाहते हैं, वे अपने-अपने गुरुकुलों, आश्रमों, संस्थानों से आचार्य द्वारा अधिकृत पत्रक पर २-छायाचित्र सहित अपना परिचय ३१ अक्टूबर, २०२३ तक आचार्य महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, अजमेर के पते पर भेज दें।

सम्मान - प्रतिवर्ष विशिष्ट वैदिक विद्वान्, विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को इस समारोह में सम्मानित किया जाता है। इस वर्ष भी सम्मान-समारोह होगा। जिसमें १७ विद्वान्-विदुषियों एवं कार्यकर्त्ताओं को सम्मानित किया जायेगा। इनके विशेष योगदान को बताते हुए इनका परिचय भी दिया जायेगा।

आर्यवीर दल व्यायाम प्रदर्शन- इस समारोह में शनिवार दिनाङ्क १८ को सायंकाल आर्यवीरों व ब्रह्मचारियों द्वारा व्यायाम-आसन आदि का भव्य प्रदर्शन किया जायेगा।

आर्यसाहित्य व यज्ञादि उपकरणों का विक्रय- इस अवसर पर परोपकारिणी सभा के अतिरिक्त भी अनेक पुस्तक प्रकाशकों-विक्रेताओं की पुस्तकें, यज्ञ-पात्र-ध्वजा आदि, आयुर्वेदिक औषधियों की दुकानें लगेंगी। इनके क्रय का अवसर प्राप्त होगा।

ऋषि लंगर- बलिदान समारोह में पधारे सभी श्रद्धालुओं के लिए ऋषि उद्यान में परोपकारिणी सभा द्वारा पौष्टिक, स्वादिष्ट प्रातराश एवं दो समय के भोजन की व्यवस्था की गई है।

नवम्बर के आरम्भ में अजमेर में हल्की ठंड होने लगती हैं, ऋषि उद्यान खुले में होने से सर्दी का प्रभाव कुछ अधिक रहेगा। रात्रि में कम्बल ओढ़ने जैसी ठण्ड रहेगी। जो समूह में रहना चाहते हैं उनकी निवास व्यवस्था ऋषि उद्यान में होगी और जो अपने निवास की व्यवस्था होटल-धर्मशाला में करवाना चाहते हैं, कृपया वे सभा कार्यालय से पूर्व सम्पर्क कर अग्रिम राशि जमा करवा कर कमरा आरक्षित करवा लें। सभी से विशेष निवेदन है कि अपने आने की सूचना कम से कम एक सप्ताह पूर्व दे देवें, जिससे संख्या का अनुमान होकर तदनुसार व्यवस्था की जा सके। सभी से निवेदन है कि १४०वें बलिदान समारोह में अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकर्त्ताओं सहित पधार कर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें, महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा उत्साह प्राप्त कर प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

ऋषि मेले में आर्यजगत् के अनेक प्रसिद्ध संन्यासी, मुनि, विद्वान्, आचार्य, भजनोपदेशक आदि पधार रहे हैं।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा '८०-जी' के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप कर मुक्त होगा। विदेश में निवास कर रहे धर्मप्रेमी सज्जन स्वदेश में होने वाले इस समारोह हेतु मुक्त हस्त से दान देकर देश का गौरव बढ़ाएँ। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। शुभकामनाओं सहित।

www.paropkarinisabha.com email : psabhaa@gmail.com

सत्यानन्द आर्य **मुनि सत्यजित्**

प्रधान **मन्त्री**

गुरुकुल प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषिउद्यान, अजमेर में संस्कृत भाषा, पाणिनीय व्याकरण, वैदिक दर्शन, उपनिषदादि के अध्ययन हेतु प्रवेश आरम्भ किये गए हैं। इन्हें पढ़कर वैदिक विद्वान्, उपदेशक, प्रचारक बन सकते हैं। कम से कम दसवीं कक्षा उत्तीर्ण १६ वर्ष से बड़े युवकों को प्रवेश मिल सकता है। प्रवेशार्थी को पहले ३ माह का अस्थाई प्रवेश दिया जाएगा। इस काल में अध्ययन व अनुशासन में सन्तोषजनक स्थिति वाले युवकों को ही स्थाई प्रवेश दिया जाएगा। सम्पूर्ण व्यवस्था निःशुल्क है। गुरुकुल में अध्ययन के काल में किसी भी बाहर की परीक्षा को नहीं दिलवाया जाएगा, न उसकी अनुमति रहेगी। प्रवेश व अधिक जानकारी के लिए-

चलभाष : ७०१४४४७०४० पर सम्पर्क कर सकते हैं। सम्पर्क समय- अपराह्न ३.३० से ४.३०।

वेदगोष्ठी-२०२३

(कार्त्तिक शुक्ल चतुर्थी से षष्ठी, संवत् २०८० तदनुसार १७, १८ एवं १९ नवम्बर, २०२३)

मान्यवर, सादर नमस्ते।

आशा करता हूँ कि आप स्वस्थ सानन्द होंगे। आपको सुविदित है कि सद्‌भावी विद्वानों के सहयोग से सदा की भांति इस वर्ष भी ऋषि मेले के अवसर पर वेदगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस गोष्ठी में देश के अनेक भागों से पधारे प्रख्यात वैदिक विद्वान् निर्धारित विषयों पर अपने शोधपूर्ण विचार प्रस्तुत करते हैं। इनमें से चुने हुए शोध-पत्र **परोपकारी** व वेदपीठ की शोध-पत्रिका के माध्यम से प्रकाशित किये जाते हैं। जिससे जो लोग गोष्ठी में नहीं आ सकते हैं, वे भी इनसे लाभान्वित होते हैं। विद्वानों को भी इस विषय पर अधिक विचार करने का अवसर मिलता है। कोविड् के २ वर्षों को छोड़ गत ३५ वर्षों से गोष्ठी का आयोजन निरन्तर किया जा रहा है। इस बार वेदगोष्ठी के लिए निर्धारित विषय है:-

महर्षि दयानन्द का सामाजिक चिन्तन व वेद

उपशीर्षक :

०१. समाज की अवधारणा
०२. वैदिक समाज का स्वरूप
०३. समाज की आवश्यकता/अपरिहार्यता
०४. समाज का आरम्भ व विकास
०५. सामाजिक उन्नति का तात्पर्य
०६. जाति प्रथा व वर्ण
०७. समाज की वैदिकता
०८. अन्तर्जातीय सम्बन्ध व वर्ण संकरता
०९. विभिन्न आधुनिक व्यवसायों का भिन्न-भिन्न वर्णों में समावेश का निर्णय
१०. दलितों के प्रति समाज का कर्त्तव्य
११. महिलाओं के प्रति समाज के विशेष कर्त्तव्य, नियम-व्यवस्था
१२. विभिन्न वर्ण व आश्रम के व्यक्तियों के समान-असमान वर्ण व आश्रम के व्यक्तियों से व्यवहार की वेदानुकूल रीति।

इस विषय में महर्षि दयानन्द द्वारा जो प्रतिपादित किया गया है, उसके प्रमाणों का संग्रह और सिद्धान्तों की पुष्टि हो, यह इस गोष्ठी का उद्देश्य है। इसी आधार पर विषय का वर्गीकरण भी किया गया है। आप अपने विस्तृत अध्ययन के आधार पर इस विषय को प्रमाणों से पुष्ट करेंगे, ऐसा विश्वास है।

आप विद्वान् हैं। अत: आपसे निवेदन है कि गोष्ठी हेतु अपने विचार प्रेषित करें। आप कौन से उपविषयों पर प्रकाश डालने की इच्छा रखते हैं इसकी सूचना लौटती डाक से भेजने की कृपा करें। प्राप्त उत्कृष्ट लेख परोपकारी पत्रिका व पुस्तकाकार में प्रकाशित किए जाते हैं। प्राय: गोष्ठियों के लेख प्रकाशित हो चुके हैं। आप जिस विषय पर लिखना चाहें उसकी सूचना गोष्ठी के संयोजक को देने की कृपा करें। पिष्टपेषण न हो तथा विषय का सर्वांगीण विवेचन हो सके इसके लिए ऐसा करना आवश्यक है। लेख टाइप किए गए १० पृष्ठ से अधिक न हो। लेख में प्रस्तुत विचारों एवं तथ्यों के लिए महर्षि कृत ग्रन्थ व भाष्यों के प्रमाण अवश्य उद्धृत करें, प्रमाणों का पूरा पता दें। निबन्धों में आये सन्दर्भ ग्रन्थ एवं अन्य सामग्री की सूची शोध की स्पष्टता के लिए आवश्यक है। यदि आपके पास कम्प्यूटर की व्यवस्था है, तो अपना लेख, खुला (श्व्रद्गठ्ठ द्धद्बद्यद्ग) हुआ ई-मेल से भेजें। पत्र/निबन्ध की भाषा हिन्दी या संस्कृत हो सकती है। लेख स्पष्ट रूप से

कागज के एक ओर टाइप किया अथवा सुपाठ्य रूप में लिखा होना चाहिए। वेद गोष्ठी में पढ़े गये सर्वश्रेष्ठ तीन शोध पत्र प्रथम, द्वितीय, तृतीय पुरस्कृत किये जायेंगे। निर्णायकों का निर्णय अन्तिम व सर्वमान्य होगा।

आपका सहयोग ही गोष्ठी की सफलता का आधार है। आपके सुझाव एवं मार्गदर्शन की प्रतीक्षा रहेगी। आप यदि किसी कारण से लेख लिखने में असमर्थ हों तो भी सूचित करने का कष्ट करें।

गोष्ठी में शोधपत्र प्रस्तुत करने के इच्छुक विद्वान्/शोधार्थी कृपया दिनांक ३१-१०-२०२३ तक अपने शोधपत्र (सार-संक्षेप सहित) आचार्य शक्तिनन्दन-९४९०४९२४९४ संयोजक, वेदगोष्ठी, परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर को प्रेषित कर दें।

सादर।

उत्तराकांक्षी

मुनि सत्यजित्

मन्त्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर।

पिछली वेद गोष्ठियों में अब तक निम्नलिखित विषयों पर विचार किया जा चुका है

०१. ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली	१९८८	१९. वेदों में राजनीतिक चिन्तन	२००६
०२. वेद और कर्मकाण्डीय विनियोग।	१९८९	२०. वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है	२००७
०३. अथर्ववेद समस्या और समाधान।	१९९०	२१. वैदिक समाज विज्ञान	२००८
०४. वेद और विदेशी विद्वान्।	१९९१	२२. सत्यार्थप्रकाश का ७ वाँ समुल्लास व वेद	२००९
०५. वैदिक आख्यानों का वास्तविक स्वरूप।	१९९२	२३. सत्यार्थप्रकाश का ८ वाँ समुल्लास व वेद	२०१०
०६. वेदों के दार्शनिक विचार।	१९९३	२४. सत्यार्थप्रकाश का ९ वाँ समुल्लास व वेद	२०११
०७. सोम का वैदिक स्वरूप।	१९९४	२५. महर्षिदयानन्दाभिमत मन्तव्य: वैदिक परिप्रेक्ष्य	२०१२
०८. पर्यावरण समस्या का वैदिक समाधान।	१९९५	२६. वेद और सत्यार्थप्रकाश का १२वाँ समुल्लास	२०१३
०९. वैदिक समाज व्यवस्था।	१९९६	२७. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	२०१४
१०. वेद और राष्ट्र।	१९९७	२८. भारतीय मत सम्प्रदाय और वेद	२०१५
११. वेद और विज्ञान।	१९९८	२९. दयानन्द दर्शन की वेदमूलकता	२०१६
१२. वेद और ज्योतिष।	१९९९	३०. वेदों में शिक्षा के सिद्धान्त	२०१७
१३. वेद और पदार्थ विज्ञान	२०००	३१. षड्दर्शनों की वेदमूलकता और महर्षि दयानन्द	२०१८
१४. वेद और निरुक्त	२००१	३२. महर्षि दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका और वेद	२०२१
१५. वेद में इतिहास नहीं	२००२	३३. उपनिषद् वाङ्मय में ईश्वर चिन्तन	२०२२
१६. वेद में कृषि व वनस्पति विज्ञान	२००३		
१७. वेद में शिल्प	२००४		
१८. वेदों में अध्यात्म	२००५		

परोपकारिणी सभा के पूर्व प्रधान स्मृतिशेष आचार्य डॉ. धर्मवीर पुण्यतिथि (६ अक्टूबर) पर श्रद्धाञ्जलि कार्यक्रम के दृश्य

मुनि सत्यजित्
(मन्त्री - परोपकारिणी सभा)

श्री ओम्मुनि वानप्रस्थी
(सदस्य - परोपकारिणी सभा)

पं. भूपेन्द्र एवं पं. लेखराज
भजनोपदेशक

आचार्य गोविन्द शास्त्री

आर जे/ए जे/80/2021-2023 तक प्रेषण : ३०-३१ अक्टूबर २०२३ आर.एन.आई. ३९५९/५९

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

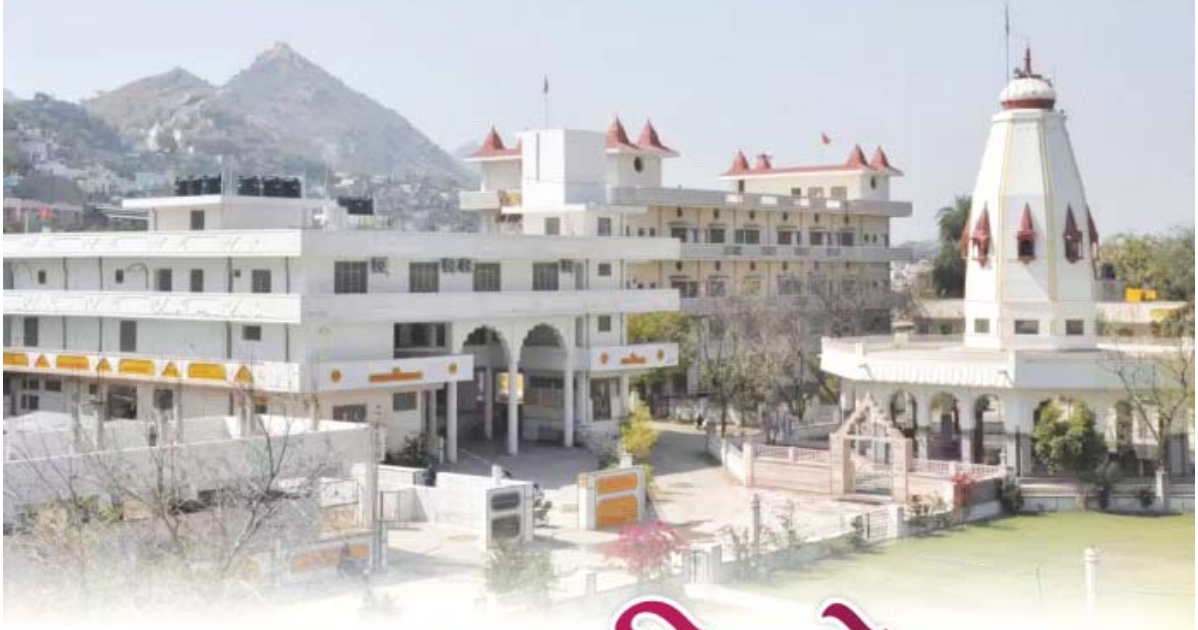

भव्य ऋषि मेला

१७, १८, १९ नवम्बर २०२३

सादर आमन्त्रण

प्रेषक:

परोपकारिणी सभा

दयानन्द आश्रम, केसरगंज,

अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट